



व्याख्याकार-सम्राट् पुस्तकालय का छाठवा पुस्तक

श्री मज्जेनीचर्य—

पूज्य श्री जवाहिरलालजी महाराज  
के  
व्याख्यानों में से

## ब्रह्मचर्य व्रत ।

सम्पादक—

श्री जैन हितचन्द्रु श्रावक-मंडल की तरफ से  
१० शकरमसाद दीक्षित

प्रकाशक—

श्री साधुमार्गी जैन  
पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय का  
हितचन्द्रु श्रावक-मंडल, रतलाम ( मालवा )

वीर सम्बत्  
२४७१

अर्द्ध मूल्य  
1/2

विक्रम सम्बत्  
२००२

प्रकाशक—

श्री साधुमार्गी चैन पूज्य श्री हुक्मीचंद्जी महाराज  
की सम्प्रदाय का हितेच्छु श्रावक मण्डल  
रतलाम ( मालवा )

प्रथमावृत्ति २०००

द्वितीयावृत्ति १९९९

मुद्रक—

चिन्मनसिंह खोदा  
श्री महावीर प्रेस, बयाव

॥ ॐ ॥

मथानगर (यावर) निरासी

श्रीमान् सेठ

पन्नालालजी पूनमचन्दजी काकरिया

की

ओर से

श्रद्ध मूल्य में

भेंट ।

---



# दो शब्द ।



शामन देव की किंचित् कृपादृष्टि व प्रताप से, मण्डल अपने ध्येय की ओर गति करता हुआ व्याख्यानसार मप्रद पुस्तकमाला का यह आठवाँ पुष्प दूमरी थार पाठकों की सेवा में रखने की समर्थ हो सका है। इनसे पूव प्रकाशित सात पुस्तक का जनता ने खूब स्वागत किया। कई पुस्तकों के दो थोड़े ही समय में दो दो तीन २ सम्स्करण निकालने पड़े। इस पुस्तक का पहला सम्स्करण श्रीमान् सेठ हजारीमलजी बहादुरमलजी धाठिया भीनासर निवासी की ओर से अर्द्ध मूल्य में वितरण किया गया था, जो थोड़े ही समय में समाप्त हो गया। जनता को इस गुण-महकवा से मण्डल को उहुत प्रोत्साहन मिला जिसके परिणाम स्वरूप मण्डल इस पुस्तक का दूसरा सम्स्करण व्याजर निवासी श्रीमान् सेठ पत्रालालजी पूनम चन्दजी काकरिया की ओर से अर्द्ध मूल्य में जनता की सेवा में रख रहा है।

पुस्तक का विषय तो पुस्तक के नाम से ही प्रकट है। रही विषय प्रतिपादन की बात। इसका निर्णय तो पाठक ही कर सकते हैं और पाठकों की ओर से सूचना आने पर ही हम यह जान सकते

(२)

हैं, कि संपादक, सम्पादक आदि कार्यकर्त्ताओं को अपने काय में वहाँ तक सफलता मिली है।

अतः म, हम इस बात को स्पष्ट कर देना उचित समझते हैं, कि पूरे श्री के व्याख्यान साधु भाषा में और शास्त्र-सम्मत ही होने हैं, लेकिन कार्यकर्त्ताओं की असावधानी से त्रुटि रहना सम्भव है। अतः पाठक महाशय किसी त्रुटि के दिखाई देने पर हमें सूचित करने की कृपा करें। हम ऐसे सज्जनों का आभार मानेंगे और आगामी संस्करण में त्रुटि न रहने देने का प्रयत्न करेंगे। इस संस्करण का प्रूप संशोधन आदि काय में श्रीयुक्त लालचन्द्रा मूणोन तथा प्रेस के मैनेजर महीदय ने सहायता दी है इसलिए हम आपके आभारी हैं। इत्यलम्।

रतलाम  
आपाही पूर्णिमा  
स० २ ०२

बालचन्द्र श्रीश्रीमाल,  
सक्रेटरी  
हीरालाल नदिचा,  
प्रेसिडेंट



# अध्याय-सूची ।



नाम अध्याय	प्रसंके
१—विषय प्रवेश	१—६
२—स्वाम और माहात्म्य	७—१५
३—अब्रह्मचर्य से हानि	१६—२४
४—ब्रह्मचर्य अत	२५—३२
५—अत रक्षा के उपाय	३३—५०
६—द्वियों और ब्रह्मचर्य	५१—५३
७—विवाह	५४—७५
८—आधुनिक विवाह	७६—८४
९—देशविरति ब्रह्मचर्य-अत	८५—११३
१०—अतिचार	११४—१२०
११—उपसंहार	१२१—१२४







# ब्रह्मचर्य-व्रत ।



(१)

## विषय-प्रवेश



‘ब्रह्मचर्य’ एक ही शब्द नहीं है, किन्तु ‘ब्रह्म’ शब्द में ‘चर्य’ कृत्य प्रत्ययान्त से बना हुआ संस्कृत शब्द है। ब्रह्म + चर्य = ब्रह्मचर्य ।

‘ब्रह्म’ शब्द के बैसे तो कई अर्थ होते हैं, परन्तु यहाँ यह शब्द वीर्य, विद्या और आत्मा के अर्थ में है। ‘चर्य’ का अर्थ, रक्षण अध्ययन तथा चिन्तन है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का अर्थ वीर्य रक्षा, विद्याध्ययन और आत्म चिन्तन है। ‘ब्रह्म’ का अर्थ उत्तम काम या कुशलानुष्ठान भा होता है, इसलिए ब्रह्मचर्य का अर्थ उत्तम काम या कुशलानुष्ठान का आचरण भा है। ब्रह्मचर्य शब्द के इन अर्था पर दृष्टिपात करने में, हम, इस निर्णय पर पहुँचते हैं, कि जिस आचरण द्वारा आत्म-चिन्तन हो, आत्मा अपने आप को पहचान सके और अपने

लिये वास्तविक सुख को प्राप्त कर सक, उस आचरण का नाम ब्रह्मचर्य' है। इस अर्थ में, ब्रह्मचर्य शब्द के ऊपर कहे हुये सध ही अर्थ आ जाते हैं।

आत्मचिन्तन के लिये, इन्द्रियो और मन पर विजय पाना आवश्यक है। प्राकृतिक नियमों के अनुसार, इन्द्रियों मन के, मन बुद्धि के और बुद्धि आत्मा के अधीन एव आत्मा की सहायिका जाना चाहिये। ऐसा होने पर ही आत्मा अपने आप को जान सकता है। इन्द्रियों, मन और बुद्धि का कर्तव्य, आत्मा को बलवान तथा पुष्ट बनाना है। बलवान आत्मा ही अपना स्वरूप जान सकता है, विद्याध्ययन में समर्थ हो सकता है और उत्तम काम तथा कुशलानुष्ठान कर सकता है। इसलिये इन्द्रियों, मन और बुद्धि का काम आत्मा को बलवान बनाना, आत्मा के हित को दृष्टि में रखना, आत्मा को अहित करने वाले कामों से दूर रहना है। इन्द्रियों और मन का, अपने इस कर्तव्य पर स्थिर रहने का नाम ही 'ब्रह्मचर्य' है।

आत्मा का हित, अपना स्वरूप जानने में है। आत्मा, अपना स्वरूप सभी जान सकता है, जब उसके सहायक एव भवक इन्द्रियों तथा मन, उसके आशावर्ती और शुभचिन्तक हों। विपरीता पन्था में, आत्मा का अहित स्वाभाविक ही है। आत्मा के सहायक नाना भेदक यहाँ इन्द्रियों और मन हैं, जो मुख का अभिलाषा से दुर्विषया का और न दाड। इन्द्रिया का, मुख की अभिलाषा से

दुर्विषयों की ओर दौड़ना, तथा मन का इन्द्रियानुगामी होना, आत्मा के लिए अहित-कारक है। आत्मा का हित तभी है, जब न तो इन्द्रियें दुर्विषयों की ओर दौड़ें, न इन्द्रिया के साथ ही साथ मन भी आत्मा का अशुभ चिन्तक बने। इन्द्रियों और मन का दुर्विषयों की ओर न दौड़ना, दुर्विषयों की चाह न करना और सुख की लालसा से उन्हें न भोगना, इसी का नाम 'ब्रह्मचर्य' है।

इन्द्रियें पाँच हैं, कान, आँख, नाक, जीभ और त्वचा। इन पाँचों इन्द्रिया के पाँच विषय हैं, शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श अर्थात् सुनना देखना सूँघना स्वाद लेना और छूना। यद्यपि ये इन्द्रिये हैं सुनने, देखने, सूँघने, स्वाद लेने और स्पर्श करने के लिये ही—इस कारण इनका नाम ज्ञानेन्द्रियों भी हैं—लेकिन ये ज्ञानेन्द्रियों तभी होती हैं और तभी आत्मा का हित भी कर सकती हैं, जब दुर्विषयों से लिप्त न हों, उनके भोग में सुख न मानें, और अपने आप को दुर्विषय भोग के लिए न समझें। इसी प्रकार मन भी आत्मा का हित करने वाला तभी है, जब वह अपने पद से भ्रष्ट होकर, इन्द्रिया का अनुगामी न बन जावे और न इन्द्रियों को ही दुर्विषयों की ओर जाने दे। मन का काम इन्द्रियों को सुख देना नहीं, किन्तु आत्मा को सुख देना है और इन्द्रियों को भी उन्हीं कामों में लगाना है, जिनसे आत्मा सुखी हो। इन्द्रियों और मन का, इम वर्तमान का समझ कर इम पर स्थिर रहना, इसी का नाम 'ब्रह्मचर्य' है।

गांधीजी ने, 'ब्रह्मचर्य' के अर्थ में लिखा है—“ब्रह्मचर्यम् —”

अर्थ, सभी इन्द्रियों और सम्पूर्ण विकारों पर पूर्ण अधिकार कर लेता। सभी इन्द्रियों को तन, मन और वचन गोधीजी कृष्ण ब्रह्मचर्य की परिभाषा से, सब समय और सब रोगों में सयम कराने को 'ब्रह्मचर्य' कहते हैं।"

यद्यपि सब इन्द्रियों और मन का दुर्विषयों की ओर न दौड़ना का नाम ब्रह्मचर्य है लेकिन व्यवहार में, ब्रह्मचर्य का अर्थ, कबल 'वीर्यरक्षा' ही लिया जाता है। इस व्यवहारिक अर्थ-अर्थात् पूर्ण रूपेण वीर्यरक्षा—मन और इन्द्रियों और मन का दुर्विषयों की ओर

नौड़ना ही मतलब निम्नलगा। पूर्णतया वीर्यरक्षा सभी हो सकती है जब सभी इन्द्रिय और मन दुर्विषयों की ओर न दौड़ें। यदि मन भी इन्द्रिय दुर्विषय की ओर दौड़ती है—उसे प्याहती है और उसका मुख मानती है—तो सम्पूर्णतया वीर्यरक्षा, कदापि नहीं हो सकती। "भालिये, पूर्णरिति से वीर्यरक्षा का अर्थ भी यही है, जो उपर कहा गया है अर्थात् सर्वप्रकार से असंयम परित्याग रूप इन्द्रियों और मन का संयम।

ब्रह्मचर्य मन, वचन और शरीर से होता है, इसलिये ब्रह्मचर्य के तीन भेद हो जाते हैं अर्थात् मासिक ब्रह्मचर्य, मासिक ब्रह्मचर्य और शारीरिक ब्रह्मचर्य। मन वचन और काय इन तीनों द्वारा पालन किया गया ब्रह्मचर्य ही पूर्ण ब्रह्मचर्य है अर्थात्

ब्रह्मचर्य के तीन भेद  
और इनका सम्बन्ध

मन में ही अत्रद्वय का भावना हो न वचन द्वारा ही अत्रद्वय प्रकट हो और न शरीर द्वारा ही अत्रद्वय की क्रिया का गई हो इमहा नाम पूर्ण ब्रह्मचर्य है। याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा है—

कायेन मनसा वाचा, सर्ववस्था सु सर्वदा ।

सर्वत्र मैथुनत्यागी, ब्रह्मचर्यं भवक्षते ॥

'शरीर मन और वचन से, सब अवस्थाओं में, सर्वदा और सर्वत्र मैथुन त्याग को ब्रह्मचर्य कहा है।'

मैथुन में, मैथुनाह्न भी शामिल हैं, निम्न वृत्त आगे ब्रह्मचर्य की रक्षा के उपाय' प्रकरण में किशा जायगा।

वाचिक ब्रह्मचर्य उसे कहते हैं, जिसके सद्भाव में, शरीर द्वारा अत्रद्वय की को-क्रिया न की गई हो। यानी, शरीर में, अत्रद्वय में प्रवृत्ति न हुई हो। मानसिक ब्रह्मचर्य उसे कहते हैं, जिसके सद्भाव में दुर्विषयों का चिन्तन न किया जावे, अर्थात् मन में अत्रद्वय की भावना भी न हो। वाचिक ब्रह्मचर्य उसे कहते हैं, जिसके सद्भाव में, अत्रद्वय-मम्यन्धी वचन न कहा जाये। इन तीनों प्रकार के ब्रह्मचर्य के सद्भाव को—यानी इन्द्रियों और मन का दुर्विषयों की ओर न ढाडने को—पूर्ण ब्रह्मचर्य कहते हैं।

वाचिक, मानसिक और वाचिक ब्रह्मचर्य का, परस्पर कत्ता, क्रिया और कर्म का-सा सम्बन्ध है। पूर्ण ब्रह्मचर्य, वही हो सकता है, जहाँ उस प्रकार के तीनों ब्रह्मचर्य का सद्भाव हो। एकत्र

अभाव में, दूसरे और तीसरे का—एक नम म नहीं तो गनै शनै -  
अभाव होना स्वाभाविक है।

साराश यह कि, इन्द्रिया का दुर्विषया म निवृत्त होने, मा  
का दुर्विषयों की भावना न करन, दुर्विषयो से दूरी रक्खन,  
मैथुनाद्वों सहित सद्य प्रकार के मैथुन त्यागने और पूर्ण रीति से,  
वीर्यरक्षा करने एवं कायिक, वाचिक और मानसिक शक्ति को,  
आत्मचिन्तन, आत्महित-साधन तथा आत्मविद्या-ध्यान म लगा  
दन का ही नाम 'ब्रह्मचर्य' है।

(७)

## लाभ और माहात्म्य

तत्रे सुया उत्तम वभचेर ।

सुशक्तोग सुप्र ।

ब्रह्मचर्य ही उत्तम तप है ।'

ब्रह्मचर्य से क्या लाभ होता है, और ब्रह्मचर्य का कैम  
माहात्म्य है, यह मन्त्रिम में न चे प्रताया जाता है।

आत्मा का ध्येय, मसार के ज मभरण से छुट कर मो  
प्राप्त करना है। आत्मा, इम ध्येय को तमी प्राप्त कर मरुता

शरीर और धर्म का  
सम्बन्ध ।

जब उसे शरीर की मजबूती है—अर्थात्  
शरीर स्वस्थ हो—तो शरीर के धर्म नहीं हो  
सकता और दिव्य रूप है, जामा अपने

उक्त ध्येय तक नहीं पहुँच सकता । काव्य प्रयोगों का है—

शरीरमाद्य खलु धर्मं सत्तम् ।

इति श्लोकः ।

शरीर हा, सब धर्मों का प्रथम और प्रधान माध्यम है ।

धर्मार्थ काम मोक्षणामागत्य ह्यन ह्यमनु ।

धर्म, अध काम और मोक्ष का प्राप्य प्रसूत करने है ।

आत्मा को, अपने ध्येय तक पहुँचाने के लिए शरीर की

महाधर्म के शारीरिक  
स्वस्थता ।

आवश्यकता है और शरीर का प्राप्यता व

माध्यम । अस्तव्य शरीर, लक्षण में असमर्थ

रहता है । ब्रह्मचर्य शरीर का पूर्ण हानी

है, अर्थात्, शरीर स्वस्थ रहता है, काव्य प्रयोगों को नहीं करके पाता ।

वैद्यक ग्रन्थों में ब्रह्मचर्य से शरीर को दान के लिए

कहा है —

मृत्यु व्याधि जरा नाशि, ह्यन कामोपयम् ।

ब्रह्मचर्य महापत्न्यं मृत्युं जगाम्यहम् ॥

‘मैं सत्य कहता हूँ कि मृत्यु, व्याधि और बुढ़ापे का नाश

वाली ब्रह्मचर्य के समान औषध ब्रह्मचर्य है । ब्रह्मचर्य मृत्यु

बुढ़ापे का नाश करने वाला महान् औषध है ।



नात्मय यह है, कि ब्रह्मचर्य से शरीर स्वस्थ रहता है जिससे धर्म का पालन होता है। इतना ही ब्रह्मचर्य का धर्म नहीं, किन्तु ब्रह्मचर्य का पालन करना भी धर्म ही है। यह धर्म का प्रधान अंग एवं धर्म का प्रधान रहस्य है। इसके लिए प्रश्न व्याकरण सूत्र में कहा है —

पठम सर सलाग पालि भूय महासगड अरग तुव  
 भूय महानगर पागार कषाड फलिह भूय रज्जु पिणद्धा  
 व्व इदकेऊ विसुद्धगेणगुण सपिणद्ध जम्मिय भग्गम्मि  
 होइ सहसा सव्व सभग्गमहियचुणियकुसल्लिय पलट्ट  
 पडिय खडिय परिसडिय विण्णसिय विण्णयसील सव  
 नियम गुण समूह ।

‘ब्रह्मचर्य, धर्म रूप पद्मपत्रोपर का पात्र के समान रहक है। यह दया, क्षमा आदि गुणों का आधार भूत एवं धर्म की शाखाओं का आधार-स्तम्भ है। ब्रह्मचर्य धर्म का महानगर का कोट है, और धर्म रूप महानगर का प्रधान रहस्य है। ब्रह्मचर्य के अपिहित होने पर सभी प्रकार के धर्म, पदों से गिर कर कच्चे बड़े के समान धूल धूल हो जाते हैं।’

ब्रह्मचर्य, धर्म कैसा आवश्यक अंग है, यह बताने हुए, और ब्रह्मचर्य का प्रशंसा करते हुए, मुनि ने कहा है —

पच महव्वय सुव्वय मूल समण भण्णइल साहु मुविण्ण ।  
 वेर विरामण पज्जव साण सव्व ममुइ महादहि वित्थ ॥१॥

तित्यकरेहि सुदेसिय मग्न नगर तिरिच्छ विवडिजय मग्न ।  
 सख पवित्रसुनिम्मिय सार सिद्धि विमाण श्रवगुण्य दार ॥२॥  
 देव नरिंद नमसिय पूइय सख जगुत्तम मगल मग्न ।  
 दुद्धरिस गुणनायक मक्क मोक्ख पहरस वडि सग भूय ॥३॥

‘ब्रह्मचर्य, पांच महाव्रत का मूल है अत उत्तम व्रत है । अथवा  
 पांच महाव्रत काल साधुओं के उत्तम व्रतों का ब्रह्मचर्य मूल है । ऐसे ही  
 धावकों के सुवर्ता का भी ब्रह्मचर्य मूल है । ब्रह्मचर्य तो प रडित है  
 साधुजनों से भली प्रकार पाछन किया गया है, वैशानुबन्ध का अन्त  
 करने वाला है और स्वयम्भूरमण महोदधि के समान दुस्तर ममार से  
 तरने का उपाय है ॥१॥ ब्रह्मचर्य, तीर्थद्वारों द्वारा सहुपदेशित है, उन्हीं  
 के द्वारा इसके पाछन का माग बताया गया है, और इसके उपदेश द्वारा  
 मरक गति तथा तियक गति का माग रोक कर, सिद्ध गति तथा विमाना  
 के द्वार खोलने का पवित्र मार्ग बताया गया है ॥२॥ यह ब्रह्मचर्य  
 देवेन्द्र और नरेन्द्रों से पूजित लोगों के द्विष्ट भी पूजनीय है, समस्त  
 लोकों में सर्वोत्तम मगल का माग है सब गुणों का अत्रितीय तथा सब  
 अष्ट नायक है और मोक्ष-भाग का मूल रूप है ॥३॥

मोक्ष के प्रधान साधन-तप में भी, ब्रह्मचर्य को पहला स्थान  
 ब्रह्मचर्य ही तप है । है । जैन शास्त्रा में ब्रह्मचर्य को सब से उत्तम  
 तप माना गया है, इसका एक प्रमाण इस  
 प्रकरण के प्रारम्भ में लिया ही जा चुका है । प्रश्न व्याकरण सूत्र  
 में भी कहा है —

जन्तु ! एते य वमचेर तव नियम नागु  
दसण चरित्त सम्मत्त विणय मूल  
यम् नियम गुणुप्पहाणजुत्तं हिमवत्त मह्ता  
तेय मत्त पसत्थ गभीर पिमिय मज्झु ।

‘ह अम्बु ! वह ब्रह्मचर्य, उत्तम तप नियम ज्ञान, दशम चरित्र  
सम्पन्न और विनय का भूषण है । जिस प्रकार सब पर्वतों में हिमालय  
महान् श्रेष्ठ त्रेत्रस्थी है, उसी प्रकार सब तपस्याओं में ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ है ।’

अन्य प्रथा में भी, ब्रह्मचर्य को उत्तम तप माना गया है ।  
यद् भी, ब्रह्मचर्य को ही तप मानते हैं । जैसे —

नपोवै ब्रह्मचर्यम् ।

रुति

ब्रह्मचर्य ही तप है ।’

गीता में भी ब्रह्मचर्य को तप माना है । उसमें कहा है —

ब्रह्मचर्यमहिंसाच, गारीर तप उच्यते ।

अध्याय १७

ब्रह्मचर्य और अहिंसा शरीर का उत्तम तप है ।’

इस प्रकार अन्य प्रथकारों ने भी, ब्रह्मचर्य को उत्तम तप  
माना है ।

पारलौकिक लाभ का ब्रह्मचर्य एक प्रधान साधन है।

ब्रह्मचर्य से पारलौकिक  
लाभ।

ब्रह्मचर्य से, आत्मा, परलोक मन्थन्वी सभा  
सुगो को प्राप्त करसकता है। प्रश्न - व्याकरण  
सूत्र में कहा है —

अज्जव साहुजणाचरिय भावखमगा  
विसुद्ध सिद्धि गइनिलय सासयमन्वावाइम पुण्णभव

‘ब्रह्मचर्य, अन्तःकरण को पवित्र एवं स्थिर रखने वाला है, माधुजनों से सेवित है मोक्ष का मार्ग और सिद्धगति का गृह है, शारवत है, बाधा रहित है पुनर्जन्म को नष्ट करने का कारण अपुनर्भव है प्रशस्त है रागादि का अभाव करने से सौम्य है, सुख स्वरूप होने से गिव है दुःख सुखादि दुःखों से रहित होने से अचञ्चल है अचय तथा अचल है, मुनियों द्वारा सुरक्षित एवं प्रचारित है, भय है, भय जनों द्वारा आचरित है, शङ्कानरहित है निभयता का देने वाला, विदुद्ध तथा भक्तों से दूर रहने वाला एवं खेद और अधिमान को नष्ट करने वाला है।’

प्रश्न व्याकरण सूत्र में आगे कहा है —

जम्मिय आराहियम्मि वय मिण सव्व सील  
तवो य विण्णओ य सज्जमो य खची मुची  
मुची तहेव इहलोइय पारलोइय जसेय किची।

‘ब्रह्मचर्य की आराधना से सभी व्रत आराधित होते हैं। तप, शीघ्र व्रतय सवध, चमा, गुह्य और मुक्ति सिद्ध होती है, तथा इस लोक और परलोक में यश कीर्ति की व्रतय-व्यवस्था पश्याती है।’

अन्य प्रकार भी ब्रह्मचर्य से परलोक सम्पन्धी लाभ बनाने हुए कहते हैं —

समुद्र तरणे यद्वत् उपायो नौ मकीर्तिता ।  
संसार तरणे तद्वत् ब्रह्मचर्यं मकीर्तितम् ॥

स्मृति ।

‘समुद्र से पार जाने के लिये जिन प्रकार नौका श्रेष्ठ साधन है, वही प्रकार संसार से तारन के लिए ब्रह्मचर्य उत्कृष्ट साधन है।’

ग्रन्थकारा ने, यज्ञ भी ब्रह्मचर्य को ही माना है। जैसे —

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यं मेव ।

वा १०५०परिषद् ।

जिसे यज्ञ कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है ।

संसार बन्धन से छूट कर, मोक्ष प्राप्ति के लिये चारित्र्य वर्म यतात हुये भगवान् न, जिन पाँच महाव्रत का उपदेश दिया है, उनमें से ब्रह्मचर्य, चौथा महाव्रत है। ब्रह्मचर्य के बिना, चारित्र्य वर्म का पूर्ण रूपेण पालन नहीं हो सकता। आत्मा को संसार बन्धन भ छोड़ा कर, मोक्ष दिलाने वाले चारित्र्य वर्म का, ब्रह्मचर्य एक प्रधान और आवश्यक अंग है। ब्रह्मचर्य के बिना, न तो अत्र तक कोई मुक्त हुआ है, न हो ही सकता है। सिद्धात्माआ को, सिद्ध गति प्राप्त कराने वाला यह ब्रह्मचर्य ही है। इस प्रकार, पारलौकिक लाभ यत्र एक प्रधान मान्य है।

ब्रह्मचर्य से पारलौकिक ही नहीं, किन्तु दृढ-लौकिक लाभ भी है। उपर बताया जा चुका है कि ब्रह्मचर्य में स्वास्थ्य अच्छा रहता है। स्वास्थ्य अच्छा रहने से ही दृढ-लौकिक कार्य सुचारु रूप से सम्पादन हो सकते हैं।

सामारिक जीवन में, शरीर स्वस्थ, सुन्दर, बलवान, एवम चिरायु रहने की, विद्या की, धन की, वर्तव्य-वृत्ता की और यशादि की अभिलाषा, स्वाभाविक ही रहती है। ब्रह्मचर्य में, ये सभी अभिलाषायें पूर्ण होती हैं। प्रसिद्ध वैनाचार्य श्री हम्बट्ट सूरी ने ब्रह्मचर्य की प्रशंसा करते हुए कहा है —

चिरायुषु सु सस्याना दृढं रुहननाभरा ।  
तेजस्विनो महावीर्या भवयुर्नृत्तचर्यत ॥

‘ब्रह्मचर्य से शरीर चिरायु सुन्दर, दृढ़ कण्ठ तप्त पृथु और पराक्रमी होता है।’

वैद्यक प्रमाण भी कहा गया है —

ब्रह्मचर्यं परं ज्ञानं ब्रह्मचर्यं परं वनम् ।  
ब्रह्मचर्यं मयोद्यात्मा ब्रह्मचर्यैव निष्ठिति ॥

‘ब्रह्मचर्य ही सब से उत्तम ज्ञान है, अगतिमित्र बल है, यह प्रथमा निश्चय रूप से ब्रह्मचर्यमय है और ब्रह्मचर्य में ही शरीर में उद्वेग हुआ है।’

इस प्रमाणा में यह बात भली भँति मिट्ट हो जाती है, कि ब्रह्मचर्य में शरीर सुन्दर भी रहता है, बलवान भी रहता है, गर जीवी भी होता है और यशस्वीति भी प्राप्त होता है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य, इहलौकिक सुखों का भी साधन है। लौकिक वैभव, विद्या, धन आदि—तभी प्राप्त होते हैं, जब शरीर स्वस्थ हो और उसमें बल तथा साहस हो। ब्रह्मचर्य से शरीर स्वस्थ भी रहता है और शरीर में, बल तथा साहस भी रहता है।

विद्वाना का मत है, कि ब्रह्मचर्य के बिना, विद्या प्राप्त नहीं होती। विद्या प्राप्ति के लिये, ब्रह्मचर्य का हाना आवश्यक है अथर्ववेद में कहा है —

ब्रह्मचर्येण विद्या ।

ब्रह्मचर्य में विद्या प्राप्त होती है।

विदुर नीति में कहा है —

‘ विद्यार्थं ब्रह्मचारी स्यात् ।

यदि विद्या के इच्छुक हो तो ब्रह्मचारी बनो ।’

सातपर्य यह कि ब्रह्मचर्य, लौकिक और लोकोत्तर, दोनों सुखा का प्रधान साधन है। इसकी पूर्ण रूपेण प्रशंसा करना, समुद्र को हाथा के सहारे तैरने का साहस करना है।

बुद्ध लोगा का कथन है, कि पूर्ण ब्रह्मचारी को मोक्ष ब्रह्मचर्य पर अपवाद स्वर्ग, प्राप्त नहीं होता। क्योंकि, पूर्ण ब्रह्मचर्य निःसन्तान रहते हैं और —

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्ग नैव च नैव च ।

सूत्रि ।

पुत्रहीन की गति नहीं होती, और स्वर्ग तो कभी भी नहीं मिलता है ।

इस श्लोक से, पूर्ण ब्रह्मचारी को स्वर्ग-मोक्ष प्राप्ति में यचित बताया जाता है, लेकिन इस श्लोक को खण्डन करने वाला दूसरा यह प्रमाण भी है —

स्वर्गं गच्छन्ति से सर्वे ये केचिद् ब्रह्मचारिणः ।

सूत्रि ।

जितने भी ब्रह्मचारी हैं, वे सभी स्वर्ग को जानते हैं ।

आर भी कहा है कि —

अनेकानि सहस्राणि, कुमारप्रह्लाचारिणः ।

दिवगतानि राजेन्द्र, अकृत्वा कुलसन्ततिम् ॥

हे राजन ! हजारों मनुष्य ऐसे हुए हैं जो ब्राह्मण नष्ट ब्रह्मचारी रहकर कुल-सन्तति को न बढ़ाते हुए भी दिव्य गति को प्राप्त की है

जैन शास्त्रानुसार, स्वर्ग प्राप्ति कोई बड़ी बात नहीं है। बड़ी बात तो मोक्ष प्राप्त करना है। ब्रह्मचर्य से समाप्त की सभी ऋद्धि मिल जावे। स्वर्ग का राज्य भी प्राप्त हो जाये तब भी यदि इसका द्वारा मोक्ष प्राप्त न हो सकता होता, तो जैन शास्त्र इन्से धर्म का श्रृंग न मानते। क्योंकि जैन शास्त्र सभी वस्तु को उपयोगी और महत्व की मानते हैं, निसके द्वारा मोक्ष प्राप्त हो। लेकिन उक्त प्रमाण तिन ग्रन्थों के हैं, वे ग्रन्थ स्वर्ग को ही अतिम ध्येय मानते हैं। फिर भी ऊपर दिए हुए श्लोकों में से, पहला श्लोक दूसरे श्लोक से अप्रामाणिक रहता है।







## अब्रह्मचर्य से हानि ।

जहाय क्रिपाग फला मणोरमा

रसेण वरणेणय भुञ्जमाणा ।

ते मुहुरदृष्ट जीविय पञ्चमाणा,

एवोवमा काम गुणे विवाग ॥

उत्तराख्यधन सूत्र १२ वां ७०

जिस प्रकार क्रिपाककृष्ट वय और रस से मणोरम और स्वादिष्ट होते हैं, परन्तु खाने पर मृत्यु का आक्षिप्तन करना पड़ता है, उसी प्रकार काम भोग भोगने से तो अशुद्ध लगने हैं परन्तु परिणाम बहुत दुःखदायी होता है । इसलिये काम भोग को त्यागो ।'

इन्द्रिया का दुर्विषय-लालुष न होने और वीर्य का पूर्णरूपण सुरक्षित रहने का नाम ही अब्रह्मचर्य है । इसका विपरीत अर्थात् इन्द्रिया का दुर्विषयलालुष होने, दुर्विषय भोग में सुख मानने और वीर्य व्यर्थ करन का नाम अब्रह्मचर्य है । अब्रह्मचर्य का दूसरा नाम मैथुन भी है, लेकिन मैथुन में मैथुनाङ्ग भी शामिल हैं । ग्रन्थकारों ने, अब्रह्मचर्य का रूप उतान के लिए मैथुन की व्याख्या इस प्रकार की है—

स्मरण कीर्तन केलि मेक्षण गुह्यभाषणम् ।  
 सकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्ति रेवच ॥  
 पतन्मैथुनमष्टौग मवदन्ति मनीषिण ।  
 विपरीत ब्रह्मचर्य मेतदेपाष्टनक्षणम् ॥

‘स्मरण कीर्तन, कलि अब्रह्मचर्य, गुह्यभाषण, सकल्प, अल्प-  
 वसाय औः क्रिया निष्पत्ति, ये मैथुन के आठ अंग हैं । इन अष्टांगों से परे  
 रहन का नाम ब्रह्मचर्य है ।

देखी या सुनी हुई स्त्रियों को याद करना, ‘स्मरण’ नामक  
 मैथुन का पहला अंग है । स्त्रियों की प्रशंसा करना, उनके विषय में  
 बातचीत करना—‘कीर्तन’ मैथुन का दूसरा अंग है । स्त्रियों के साथ  
 किसी प्रकार के खेल खेलना ‘केलि’ मैथुन का तीसरा अंग है । काम  
 दृष्टि से किसी स्त्री को देखना, ‘मेक्षण’ मैथुन का चौथा अंग है ।  
 स्त्रियों से छिप कर बातें करना ‘गुह्य भाषण’ पाँचवा अंग है । स्त्री  
 सम्बन्धी भोग भोगने का विचार लाना ‘सकल्प’ मैथुन का छठा अंग  
 है । स्त्री-प्राप्ति की चेष्टा करना, ‘अध्यवसाय’ नाम का सातवाँ और  
 स्त्री सम्भोग द्वारा धीरे नष्ट करना, ‘क्रियानिष्पत्ति’ मैथुन का  
 आठवाँ अंग है ।

जिस प्रकार पुरुषों के लिये स्त्री सम्बन्धी आठों कार्य  
 त्याज्य हैं इसी तरह स्त्रियों के लिए भी पुरुष सम्बन्धी आठों बातें  
 त्याज्य हैं ।

ब्रह्मचर्य के विरोधी अन्नब्रह्मचर्य-मैथुन के उक्त आठ अंगों में से जिस २ अंग की पूर्ति होती जाती है, ब्रह्मचर्य, उतने ही उतने अंग में नष्ट होता जाता है और मैथुन के आठों अंग की पूर्ति होने पर, ब्रह्मचर्य, पूर्ण रूपेण नष्ट हो जाता है। मैथुन और ब्रह्मचर्य, परस्पर विरोधी हैं, इसलिए जहाँ एक है, वहाँ दूसरा नहीं ठहर पाता।

मैथुन और मैथुनाङ्ग का नाम ही अन्नब्रह्मचर्य है। जीर्ण भी मैथुन से ही नष्ट होता है। इन्द्रियों का दुर्विषय-लोलुप होना ही मैथुन है, और मैथुन ही इन्द्रियों की दुर्विषय लोलुपता है।

मैथुन के किसी भी एक अंग के सेवन से अर्थात् आशिक रूप में ब्रह्मचर्य खण्डित होने से मैथुन का अङ्ग म सेवन आर आशिक मैथुन सघन स हानि ब्रह्मचर्य का नाश होना स्वाभाविक है। क्योंकि, मैथुन से किसी भी एक अंग के सेवन से एक न एक इन्द्रिय दुर्विषय-लोलुप बनेगी ही, और किसी भी एक इन्द्रिय के दुर्विषय लोलुप बन जाने पर सभी इन्द्रिय दुर्विषय लोलुप बन जाती हैं। उदाहरण के लिये, यदि धान की शब्द में सुख मानते हैं, तो नाक, उनके शरीर की गन्ध में, जीभ उनसे सभाषण करने में, नेत्र उनका रूप देखने में और त्वचा उनका स्पर्श करने में सुख मानगी। क्योंकि—

इन्द्रियाणां तु सर्वेषाम् यथेक्षरतीन्द्रियम् ।

तेनास्य क्षरति मद्वा हते पादादिषोदकम् ॥

मधुसूक्ति अ० २

‘जिस प्रकार, जख की मशक में एक भी छेद हो जाने पर फिर उसमें जख नहीं ठहरता, वही प्रकार सब इन्द्रियों में से, एक भी इन्द्रिय के विषय-लोलुप बनने पर, बुद्धि नष्ट हो जाती है।’

बुद्धि के नष्ट होने पर, इन्द्रिय-सयम कहा ? स्वभावतः विषय प्रिय इन्द्रियों फिर तो दुर्विषयों की ही ओर दौड़ती हैं। बुद्धि के नष्ट हो जाने से, इन्द्रियें निरंकुश हो जाती हैं और फिर आत्मा को दिन प्रतिदिन, पतन की ही ओर अप्रसर करती हैं। नष्ट बुद्धि इन्द्रियों के बश होकर, यह मिद्वान्त मानने लगता है —

असत्यमप्रतिष्ठ ते जगदाहुरनीश्वरम् ।

अपरस्पर सभूत किमन्यत्काम हेतुकम् ॥

गी० अ० १९

जगत् अत्यन्त, निराधार और अनीश्वर है। यह यों ही बना है। काम के सिवा इस ससार के बनने का दूसरा क्या हेतु हो सकता है ?

इस सिद्धान्त को मान कर फिर—

ईहते काम भोगार्थे मन्याये नार्थं सचयान् ।

गी० अ० २३

‘केवल काम भोग के लिये ही अथवा यसे बन बटोरने लगते हैं।

तात्पर्य यह, कि मैथुन के किसी एक भी अंग के सेवन से अर्थात् एक भी इन्द्रिय की दुर्विषय-लोलुपता से अब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है और अब्रह्मचर्य, पूर्ण-रूपेण अपना आ

सक्षिप्त में, अन्नह्यचर्य से तात्पर्य है—दुर्विषय भोग, मैथुन, या वीर्य का स्खिडित करना। जैन शास्त्रों ने ही नहीं, किन्तु अन्य प्रायकारों ने भी इस अन्नह्यचर्य की लौकिक और लोकोत्तर दोनों ही दृष्टि से, बड़ी निंदा की है। प्रश्न व्याकरण सूत्र में अन्नह्यचर्य को चौथा अधर्म द्वारा मानते हुए कहा है —

जम्बू ! अबभचउत्य सदेव मणुया सुरस्स लोणस्स पत्यण्डज्ज पक पणग पास जाल भूयत्यी

हे जम्बू ! चौथा अधर्म द्वारा अन्नह्यचर्य है। देव, असुर, मनुष्य, लोक-पति आदि इस अन्नह्यचर्य रूपी वीचर्य की दृष्ट दृष्ट फसे हुए हैं। देव असुर, मनुष्यादि को यह जाह्न के सपान फल वाखा है। पुरुषों के लिए यह मधुमक्ख का कारण है। तप, मयम व ब्रह्मचर्य के लिए विघ्न-रूप है अर्थात् इन्हें बाध करने वाखा है। विषय आदि प्रमादों का मूक है। इन्द्रियों के समीप जो कायर र कापुरुष हैं, उन लोगों द्वारा सेवित एवं सज्जनों द्वारा निन्दित चर्य तीनों लोक में अप्रतिष्ठित एवं जरा मृत्यु रोग शोक की वृद्धि करने व है। चर्च, चर्चन, आघात तथा दर्शन मोहनीय और चरित्र मोहनीय का हेतु है। प्राणियों को इसका परिचय दीघकाह से है, इसलिए इ अग्रत करमा कम्मि है।

प्रश्न व्याकरण सूत्र में, आग अन्नह्यचर्य के तीसः धताते हुये यह धताया गया है, कि बड़ी-बड़ी ऋद्धि वाले चर्च

तथा माण्डूकिक राजाओं की भी इससे अतृप्ति रही है। इसकी निन्दा करते हुए प्रश्न व्याकरण सूत्र में आगे कहा है —

मेहुणसन्नप गिद्धाय माह भरिया सत्येहि हणति एक मेक्क  
विसय त्रिसे उदारणहिं श्रवरे पर दारंहि हिंसति

मैथुन में गृह्य मन्त्रचर्य के अज्ञान से भरे हुए लोग परस्पर एक दूसरे की घात करते हैं विष देकर मार डालते हैं। यदि पर दास हुए तो उस स्त्री का पति जातपति की घात करता है। इस प्रकार अमृतमन्त्रचर्य शत्रु का कारण है। अमृतमन्त्रचर्य से भ्रम और स्वप्न का भाव होता है एवं परदार। स गृह्य स्त्री मोह से परिपूय घोड़े, हाथी बैल, भैंसे, शृग आदि पशु परस्पर खड़ कर मर जाते हैं और अपनी सम्पत्ति तक की घात कर डालते हैं। इसी प्रकार पक्षी और मनुष्य भी परस्पर युद्ध करते हैं। अमृतमन्त्रचर्य के कारण मित्रों में भी वैर भाव उत्पन्न हो जाता है। अमृतमन्त्रचर्य से विद्याग्ण द्वारा प्ररूपित चारित्र्य रूपी मूल गुण का भेदन हो जाता है। धुत्र चारित्र्य बर्मे में रत्न जीव भी स्त्री पग से क्षय मान में भ्रष्ट बन जाते हैं। सम्बन्धी और सुमती भी स्त्री सग से अत्यन्त लधा अकीर्ति को प्राप्त होते हैं। अमृतमन्त्रचर्य से शरीर रोगी बना रहता है और अन्त में शीघ्र ही मृत्यु के मुक्त में पड़ना पड़ता है। अमृतमन्त्रचर्य से पर-स्त्री-भ्रमण के कारण कितने ही जीव बधन में पड़ते हैं और मारे जाते हैं। अमृतमन्त्रचर्य के मोह से पराभव को पाये हुये जीव इस प्रकार दुर्गति के अधिकारी बनते हैं।

प्रश्न "याकरण सूत्र में आगे यह भी बताया गया है, कि अमृतमन्त्रचर्य के कारण स्त्रियाँ के लिए कैसे-कैसे महान् संग्राम हुए हैं।

खियों के लिए होने वाले समारामों का घर्णन करने के पश्चान् प्रश्न व्याकरण सूत्र में लिखा है —

इहलाएसात्रनहा परलोप्यनहा महया मोह तिभिसघयार  
घोरे तस यावर सुहुम बादरेसुय पञ्जत्तम पञ्जत्तक साहारण  
सरीर पचेय

‘इन्द्रियों का दुर्विषय भोग रूप मैथुन इस श्लोक में बन्धन-वृत्ती और परश्लोक में अनिष्टकारी है। महा मोह रूप अन्धकार का स्थान है। तस, स्यावर, सुषम बादर पयात अपर्यासि आदि पर्याया से चतुर्गति रूप समार में विशेष समय तक और बारम्बार परिभ्रमण कराने वाले मोहनीय कर्म का वर्णक है।’

एसासो अबमस्त फल विवागो इह लोइयो पर लोइयो  
अप्य सुहो बहु दुखो महग्भयथा बहुरयप्य गाढा दारुणो  
कफ सो असाओ बास सहस्तेहि मुच्चगोनय अवेदयिता  
अत्यहु मोकखाति ।

इस प्रकार अमल्लवर्ष का फल इस श्लोक तथा परश्लोक में अत्य सुख और महान् दुःख है। अमल्लवर्ष महा भय का स्थान, कमरूपी रज में गाढ़ा तरह चिरा हुआ एक दारुण कर्षण और बिना भोगे न छटने वाले कर्मों को बाँधने वाला है।’

गीता में अत्रह्मचर्य की निम्न प्रकार से निन्दा की है —

कामप्य क्रोध एव रजोगुण समुद्भव ।  
महाशनो महा पाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।  
 ययोल्लेनेना वृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥  
 आवृतं ज्ञानमेतेन हानिनो नित्य वैरिणा ।  
 कामरूपेण कौंतेय दुष्पूरेणानलेन च ॥  
 इन्द्रियाणि मना बुद्धिरस्याधिष्ठान मुच्यते ।  
 एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य ददिनम् ॥

अध्याय ३

मनुष्य को पाप के रास्ते ले जाने वाज रजोगुण से उत्पन्न काम और क्रोध ही हैं। ये भुक्तमर या वेद महा पापी और शत्रु हैं। निम प्रहार भाग' धुएँ से ढकी रहती है, काँच मैल से धुँसका दाखला है और गभ का बालक भिन्ना से ढका रहता है, वसी प्रकार सारा ममार काम से ढका हुआ है। याती जिनमें काम न हो—जो काम से पर हो—वह सतार से भी पर है। हे शत्रुन ! कभी तूत न होने वाली यह काम रूपी घाग आत्मा की सदा की वैरिन है। ज्ञानियों के ज्ञान को भी यह ढाँक देती है। इस काम के ढहरने की जगह इन्द्रिय, मन और बुद्धि हैं। यह इन्हीं के सहार ज्ञान को ढाँक कर मनुष्य को मोहित करता है।'

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।

काम क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

गीता अ० १६

'काम, क्रोध और लोभ ये नरक के द्वार हैं और आत्मा का नश करने वाले हैं। हमलिये इन तीनों को त्याग देना चाहिये।'



इस प्रकार, अन्नद्वय की सय ने निन्दा की है। परलोक सम्बन्धी जो हानियाँ हमसे होती हैं, उनका घर्णन तो किया ही गया है लेकिन इस लोका में भी इसमें अनेक हानियाँ हैं। इससे होने वाली समस्त हानियों का घर्णन करना कठिन है।

अन्नद्वय मैथुन से, हिंसा का महान् पाप भी होता है। भगवती सूत्र में, गौतम श्यामी के ग्रन्थ पर, भगवान् ने अन्नद्वय से हिंसा। फर्माया है कि 'निम्न प्रकार रुई से भरी हुई नली में, तप्त लोहे की मलाह डालने से रुई का नाश होता है उसी प्रकार, कामाचार सेवन करने वाला, स्त्री-योनि के जन्तुओं का नाश करता है। ये जन्तु सन्नी-वचन्द्रिय हैं, और उनकी सद्यो अधिक से अधिक नबलाए हैं। इन नबलाए जीवों के सिवा, संमूर्द्धिम जीवों की तो गिन्ती ही नहीं है।' इस प्रकार एक बार के मैथुन से अनेक जीवों की हिंसा का पाप होता है।

स्त्री-योनि में जीव होते हैं इस बात को दूसरे लोग भी मानते हैं। बाल्मायन काम-सूत्र का टीकाकार और रति-रहस्य का कर्ता भी स्त्री-योनि में जीव होना स्वीकार करता है। जब स्त्री-योनि में जीव हैं, तो मैथुन से उनका नाश होना और हिंसा का पाप लगना स्वाभाविक है। इसलिए अहिंसाग्रन्थ की रक्षा की दृष्टि से भी अन्नद्वय त्याज्य है।



(४)

## ब्रह्मचर्य-व्रत ।

विमरस बुधा योपित्सगात्सुखात् क्षण भगुरात्  
कुरुत करुणा मैत्री प्रज्ञा बधूजन सगमम् ।  
न खलु मरके हाराफ्रास घनस्तन मण्डल  
शरण मथवा थोणी विम्ब रणन्मणि मेखलम् ॥

भद्रहरि

‘हे बुद्धिमानो ! पश्चिम और नाशवान खो मग क सुख को छोड़ कर मैत्री, करुणा और प्रज्ञा ( ज्ञान ) रूपी खो का साथ करो । नरक में, जब तापना होगी, तब खियों क हार भूषित रतन-मण्डल और धुवसूदार करधनी से शोभित कमर सहायता न करेगी ।’

अब्रह्मचर्य से निरत कर, ब्रह्मचर्य पालन करने की प्रतिज्ञा करने का नाम ‘ब्रह्मचर्य-व्रत’ है । इस प्रकार की प्रतिज्ञा पालन करने वाले को, ‘ब्रह्मचारी’ कहते हैं ।

कभी कोई कहे कि ‘प्रतिज्ञा-रूप व्रत स्वीकार किये बिना ही, यदि ब्रह्मचर्य का पालन किया जाये, तो क्या हर्ज है ? यदि कोई

ब्रह्मचर्य को व्रत रूप  
क्यों स्वीकारना  
चाहिये ?

हानि नहीं है, तो फिर ब्रह्मचर्य पालन की  
प्रतिज्ञा करने—यानी व्रत धारण करने की क्या  
आवश्यकता है ?' इसका उत्तर यह है, कि  
सकल्प हीन धार्या को पूर्ति में मन्दह ही

रहता है। सकल्प, यानी व्रत या प्रतिज्ञा कर लेने पर, काय में होने  
वाली बाधाओं को सह्य की शक्ति होती है, मन म दृढ़ता रहती है  
और 'प्रतिज्ञा भ्रष्ट न हो जाऊँ' इस बात का भय रहता है। इनके  
सिवा व्रत रूप धारण किये बिना ब्रह्मचर्य पालन से, परलोक  
सम्बन्धी जो लाभ होना चाहिये, वह लाभ भी नहीं होता। नैन शास्त्रों  
में तो इस बात का प्रतिपादन है ही, लेकिन अन्य ग्रन्थों में भी यही  
बात कही गई है। जैसे —

सकृत्पेन विना राजन् यत्किञ्चित् कुरुतेनर ।

फलस्याप्यत्पक्व तस्य धर्मस्यार्थ क्षय भवति ॥

पञ्चपुराण ।

इ राजन् ! सकृद्वर क बिना जो कुछ किया जाता है उसका  
फल बहुत थोड़ा होता है और उस कार्य के धर्म का बाधा भाग नष्ट  
हो जाता है ।'

किसी भी शुभ कार्य को करने के लिये, सकल्प का होना  
अत्यावश्यक है और परलोक के लिये हितकारी नियमों के पालन  
का संकल्प ही व्रत कहलाता है। यद्यपि, व्रत रूप धारण किये बिना  
भी, ब्रह्मचर्य का पालन करना बुरा नहीं है—अच्छा ही है—लेकिन

ब्रह्मचर्य पालन से, पारलौकिक जो लाभ प्राप्त होना चाहिये, वह लाभ ब्रह्मचर्य को व्रत रूप स्वीकार किये बिना, पूर्णतया प्राप्त नहीं होता। इन सत्र बातों को दृष्टि में रख कर, ब्रह्मचर्य को, व्रत रूप स्वीकार करना उचित है। ब्रह्मचर्य को व्रत-रूप स्वीकार करने से, किसी प्रकार की हानि नहीं है। हां, लाभ अवश्य हैं जो उपर प्रताये जा चुके हैं।

भगवान महावीर से पूर्व, धार्मिक तीर्थङ्कर भगवान के शासन काल में ब्रह्मचर्य नाम का व्रत अलग न था। उस समय अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिमह, ये चार ही ब्रह्मचर्य व्रत अपरिमह व्रत से अलग बर्यो हैं ? व्रत थे। चार व्रत होने पर भी, ब्रह्मचर्य का पालन तो होता ही था, लेकिन ब्रह्मचर्य व्रत अपरिमह व्रत के ही अन्तर्गत हो जाता था और परिमह के त्याग में स्त्री आदि अत्रब्रह्मचर्य का भी त्याग सम्भवा जाता था। यद्यपि, अपरिमह व्रत में ब्रह्मचर्य व्रत का भी समावेश हो जाता है और परिमह के त्याग में, अत्रब्रह्मचर्य का भी त्याग हो जाता है, परन्तु भगवान महावीर ने, अपने समय के एष भविष्य के धर्म-जड मनुष्या को दृष्टि में रख कर, ब्रह्मचर्य-व्रत का, अलग ही उपदेश दिया। भगवान पारश्वनाथ तक चार ही व्रत थे, और भगवान महावीर ने पाँच व्रत का उपदेश दिया। इस बात को लेकर भगवान पारश्वनाथ की परम्परा के मुनि श्री केशीस्वामीजी और भगवान महावीर के शिष्य श्री गौतम स्वामी में, चर्चा भी हुई, जिसका विस्तृत वर्णन श्री उत्तराध्ययन सूत्र के २३ वें अध्यायन में है।

शास्त्रकारों ने मुविधा की दृष्टि से, ब्रह्मचर्य-व्रत के दो भेद पर दिये हैं। एक सर्वविरति ब्रह्मचर्य व्रत और दूसरा देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत। सर्वविरति ब्रह्मचर्य-व्रत उसे कहते हैं, जिसमें जीवनभर के लिये मैथुन से निवृत्ति होने, धीर्य अक्षत रखने और सभी प्रकार के काम भोग न भोगने की प्रतिज्ञा की जाये। इतना ही नहीं बिन कार्यों से ब्रह्मचर्य व्रत दुपित्त बने, व सभी काय त्याग कर नव-खाड़ा का पालन किया जाय। इस व्रत को स्वीकार करने वाला, 'सर्वविरति पूर्ण ब्रह्मचारी' कहलाता है। ऐसा पूर्ण ब्रह्मचारी मन, वचन और काय से वैश्रिय तथा आध्यात्मिक शरीर सम्बन्धी काम भोगों को न भोगता है, न भोगता है, न भोगने वाले को अक्षय ही समझता है। सर्वविरति ब्रह्मचारी, उसे अटारह प्रकार के काम भोगों को त्याग कर, ब्रह्मचर्य का पूरा रीति से पालन करने की प्रतिज्ञा करता है। सर्वविरति ब्रह्मचर्य का, अन्य ब्रह्मचारियों ने, नैष्ठिक ब्रह्मचर्य नाम दिया है।

देशविरति ब्रह्मचर्य-व्रत उसे कहते हैं, जिसमें स्व-स्त्री की मर्यादा रखी जाय। इस स्थान पर, देशविरति-ब्रह्मचर्य-व्रत का ही वर्णन किया जाता है। देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत का वर्णन आगे किया जायगा।

सर्वविरति ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कौन कर सकते हैं, इसके लिये एक आचार्य कहते हैं —

शक्य ब्रह्म व्रत घोर शूरैश्च नतु कातरै ।  
करि पर्याण मुद्रोद्दु करिभिर्नतु रासभै, ॥

ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना शूरो क बिचे ही शक्य है, कायरो के बिचे नहीं, नभे कि हाथी का पलान, हाथी ही उठा सकता है, गधा नहीं उठा सकता ।'

सर्वविरति ब्रह्मचर्य व्रत का पालन, संसार-त्यागी साधु ही कर सकते हैं, दूसरा नहीं कर सकता । संसार-व्यवहार में रहने वाले सभी मनुष्य, एकदम से संसार-व्यवहार नहीं छोड़ सकते, इसलिये संसार-व्यवहार में रहने वालों के लिये, देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत धतलाया गया है । इस प्रकार गृह त्यागियों के लिये सर्वविरति ब्रह्मचर्य व्रत है और गृहस्थियों के लिये देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत ।

इन्द्रियों, पाप से नहीं मिली हैं, किन्तु पुण्य से मिली हैं । पुण्य से मिली हुई इन्द्रियों को, पुण्य की ओर लगाना ही उचित है, न कि पाप की ओर । जब इन पुण्य से मिली हुई इन्द्रियों द्वारा, धर्म का लाभ लिया जा सकता है, तब इनसे पाप क्यों किया जावे ? इन्द्रियों द्वारा, काम भोग भोगना, पुण्य से प्राप्त इन्द्रियों को पाप में प्रवृत्त करना है । इन्द्रियों की सार्थकता तभी है, इनके मिलने का लाभ तभी है, जब इन्हें असंयम में न लगाया जाकर, समय म...

ब्रह्मचर्य-व्रत स्वीकाराने  
संक्षम ।

रगा जाये। इनके द्वारा दुर्विषय भोगना—इन्द्रियों का दुर्विषय म  
लिप्त होना—उसी प्रकार नाशकारी है जिस प्रकार पतङ्ग के लिये  
दीपक की लौ से मोह करना नाशकारी है। पतङ्ग, केवल आँखों क  
विषय रूप पर मोहित होन से नष्ट हो जाता है तो जिनकी पाँचा  
इन्द्रिया दुर्विषय लोलुप हों, वे नष्ट क्या न होंगे? इन्द्रियों को  
दुर्विषय भोग में लगाने से—दुर्विषय-लोलुप बनाने से—नाश  
अवश्यम्भावी है। इसलिये काम भोग के दुष्परिणामों से बचने क  
वास्ते सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य व्रत को स्वीकार करना और पालन  
करना उचित है।

मोक्ष की आराधना के लिये, चारित्र्य धर्म के अन्तर्गत,  
भगवान ने जिन पाँच महा व्रतों को बताया है, उनमें से यह सब  
प्रथम ब्रह्मचर्य, चौथा महाव्रत है। मोक्ष-प्राप्ति के लिये, ब्रह्मचर्य  
व्रत को स्वीकार करना और पालन करना आवश्यक है। ब्रह्मचर्य  
व्रत के बिना अन्य व्रत मोक्ष के लिये, पूर्ण रूपेण सार्थक नहीं होते,  
न ब्रह्मचर्य के अभाव में अन्य व्रत, भली प्रकार आराधे ही जा  
सकते हैं। ब्रह्मचर्य-व्रत, मोक्ष के लिये वैसा उपयोगी है, यह बताते  
हुये एक आचार्य कहते हैं —

एष धम्म धुए नियए सासए जिए दसिए ।

सिग्गहा सिग्गति भाणेण निग्गिह सति तदापरे ॥

श्री उत्तराश्वयन सूत्र ।

'यह ब्रह्मचर्य धर्म, भु नित्य अविनाशी और जिनदेव का कहा हुआ है। इसी ब्रह्मचर्य धर्म से, सिद्ध हुए हैं होते हैं और सिद्ध होंगे।'

ब्रह्मचर्य व्रत की प्रशंसा सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य व्रत की प्रशंसा करते हुये, एक आचार्य कहते हैं —

व्रतानां ब्रह्मचर्यं हि निर्दिष्टं गुरुक व्रतम् ।  
तज्जन्य पुण्य सम्भार सयोगाद् गुरुच्यते ॥

व्रतों में ब्रह्मचर्य ही बड़ा व्रत है; इसी व्रत के पुण्य सयोग से गुरु कहे जाते हैं।'

गीता में कहा है —

यदा सहरते चाय कूर्मोऽज्ञानीव सर्वश ।  
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य मज्ञा मतिष्ठिता ॥

अध्याय २ रा

'जिसे प्रकार कछुआ अपने सब अंगों को सिकोड़ लेता है उसी प्रकार विषयों की ओर स इन्द्रियों को सिकोड़ लेना याज्जा ही स्थिर बुद्धि है।'

महाभारत में कहा है --

मृत्ये रसानां सतत दान्तानां भूर्ध्व-रेत साम ।  
ब्रह्मचर्यं दहेद्राजन् । सर्वं पापाय पासितम् ॥

शांति पर्व ।



‘हे राजन् ! सत्य स प्रेम करने वाले ब्रह्मचारी का ब्रह्मचर्य समस्त पापों को नष्ट करने वाला है ।’

ब्रह्मचर्य की प्रशंसा में, विद्वान् लोग कहते हैं —

ब्रह्मचर्यं प्रतिष्ठायां धीर्यं लाभो भवत्यपि ।

सुरत्व मानवोयाति चान्तेयाति परागतिम् ॥ १ ॥

ब्रह्मचर्यं पालनीयं देवानामपि दुर्लभम् ।

धीर्ये सुरक्षिते याति सर्वं लोकार्यं सिद्धय ॥ २ ॥

सूत्रि ।

ब्रह्मचर्य का पालन करने से धीर्य का लाभ होता है, मनुष्य भी देवता के समान दिव्य हो जाता है और ब्रह्मचर्य की साधना पूरी होने पर परमगति भी मिलती है ॥१॥ ब्रह्मचर्य, देवताओं के लिये भी दुर्लभ है, इसलिये इसका पालन करना उचित है; धीर्य को सुरक्षित रखन से सब लोकों का अर्थ सिद्ध हो जाता है ॥२॥’

इस प्रकार, सर्वविरति ब्रह्मचर्य की, सब शास्त्र और ग्रन्थों ने प्रशंसा की है । यदि धर्म का पूर्णतया पालन तभी हो सकता है, जब, इस सर्वविरति ब्रह्मचर्य-व्रत को स्वीकार करके, पूर्ण-रिति से पाला जाये । इस ब्रह्मचर्य-व्रत के बिना, अन्य व्रतों को स्वीकार करना तथा उनका पालन करना भी, मोक्ष के लिये पयाप्त नहीं है । अतः मोक्षेच्छुकों को, अन्य व्रतों के साथ इस व्रत को स्वीकार करना और पालन करना आवश्यक है ।

## व्रत-रक्षा के उपाय ।

जेण सुद्धचरिएण भवति सुवमणो, सुसमणो, सुसाह,  
स इसी, स मुणो, स सजए, स एव भिक्खु जो सुद्ध  
चरति वमचेर ।

प्रथम व्याकरण सूत्र ।

ब्रह्मचर्य के शुद्धाचार्य से ही, उत्तम ब्राह्मण उत्तम धर्मण, और  
उत्तम साधु होता है । शुद्ध ब्रह्मचर्य का पाछने वाला ही, श्रमि, मुनि,  
मयमी श्री भिक्षु है ।'

शास्त्रों में, ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा के, प्रधानत दो उपाय  
घताये गये हैं । एक क्रिया-मार्ग और दूसरा ज्ञान मार्ग । क्रिया-मार्ग,  
ब्रह्मचर्य के विरोधी संस्कारों को रोकता है  
ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा  
क दो प्रधान उपाय ।  
और इस प्रकार ब्रह्मचर्य-व्रत की रक्षा करता  
है । लेकिन इस मार्ग में, अत्रह्मचर्य के संस्कार  
निर्मूल नहीं होते । ज्ञान-मार्ग, अत्रह्मचर्य के संस्कारों को, निर्मूल कर  
देता है । फिर ब्रह्मचारी को, ब्रह्मचर्य-पूर्ण जीवन स्वाभाविक एवं  
सरल और अत्रह्मचर्य पूर्ण जीवन अस्वाभाविक एवं कठिन प्रतीत

होता है। ज्ञान-मार्ग द्वारा प्राप्त रक्षण, स्वरूप चि तन या आत्म विवेक से न ब्र हुत्रा होता है, इसलिये एकान्तिक और आत्यन्तिक है, कभी नाश नहीं होता। लभिन क्रिया मार्ग द्वारा प्राप्त रक्षण, एकान्तिक या आत्यन्तिक नहीं है। क्रिया में किंचित भी ढिलाई होने से, अन्नब्रह्मचर्य के सूक्ष्म सहकार का स्वरूप होना सम्भव है। यद्यपि इन दोनों उपायों में से उत्तम उपाय ज्ञान मार्ग है, फिर भी निम्न ब्रह्मचारी ने, ज्ञान मार्ग को पूरी तरह अपना लिया है, उसको क्रिया मार्ग की उपेक्षा करना कदापि उचित नरा है। क्योंकि क्रिया मार्ग को त्याग देने से, व्यवहार में भी धोखा हो सकता है, ब्रह्मचारी अन्नब्रह्मचारी की पहचान भी नहीं रहती और क्रिया शून्य ज्ञान, पूर्ण तथा लाभप्रद भी नहीं है।

क्रिया-मार्ग में, ब्राह्म नियमा का समावेश है। क्रिया मार्ग द्वारा, ब्रह्मचर्य-व्रत की रक्षा के लिये, प्रश्न क्रिया मार्ग से ब्रह्मचर्य ध्याकरण सूत्र में पाँच भावनाएँ बताई गई व्रत की रक्षा। हैं जो इस प्रकार हैं —

- १—केवल क्रिया से सम्भव रखने वाली पथाओं को, क्रियों के समुच्चय या अयत्र न रहे।
- २—क्रियों की मनोहर इन्द्रियों न देखे।
- ३—क्रिया के रूप को न देखे।
- ४—राम भोग को घटाने वाली वस्तुओं को न देखे, न कहे, न स्मरण करे।

५—कामोत्तेनत्र पदार्थ न सात्रे-पीवे ।

इसी प्रकार ब्रह्मचर्य-व्रत की रक्षा के लिए भगवान् ने उत्तराध्ययन सूत्र में दस समाधिस्थान बताये हैं, जो सक्षिप्त में इस प्रकार हैं —

१—वैश्रिय और आहारिक शरीर धारिणी स्त्री, पशु और नपुंसक के मसर्ग वाले आसन और निवास-स्थान आदि का उपयोग नहा करना यानि संमग रहित स्थान में रहना ।

२—अकेली स्त्री से घात-चीत न करना, न केवल अकली स्त्री का कथा-जाता, व्याख्यान आदि सुनाना और स्त्री-कथा न करनी । यानि केवल स्त्री के रूप वेश आदि का वर्णन भी न करना ।

३—स्त्रिया के साथ एक आसन पर न बैठना और जिस आसन पर स्त्री बैठी हो, उस आसन पर स्त्री के उठने से नौ घड़ी पश्चात् तत्र न बैठना ।

४—स्त्रियों के मनोहर श्लोक, नात्र आदि का तथा दूसरे अगोपाग का अवलोकन न करना, न उनका चिन्तन ही करना ।

५—स्त्रिया के रति प्रसंग के मोहन शब्द, रति कलह के शब्द, गीत की ध्वनि, हँसी की किलकिलाहट, क्रीडा के शब्द और निरह रदन को पर्दे के पीछे से या नीमाल की आड से भी न सुनना ।

६—पूव में अनुभव का हुई, आचरण का हुई या सुनी हुई रति क्रीडा, काम क्रीडा आदि का स्मरण भी न करना ।

- ७—पौष्टिक ग्राह्य एवं पेय पदार्थों का उपयोग न करना ।  
 ८—सादा भोजन आदि भी प्रमाण से अधिक न म्याना पीना ।  
 ९—भृंगार-स्नान, त्रिलेपन, धूप, माला, त्रिमूषा और केश-रचना आदि न करना ।  
 १०—कामोत्तेजक शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श से बचना । सर्वविरति ब्रह्मचारी को, उपर कही हुई भावनाओं एवं समाधि स्थान के नियमों का पालन करना निश्चय आवश्यक है । ऐसा न करने से, सर्वविरति ब्रह्मचर्य व्रत में अतिचार लगता है और अतिचार लगने से व्रत दूषित हो जाता है ।

यहाँ प्रश्न होता है कि आँसुओं के सामने आये हुये रूप को या कान में पड़े हुये शब्द को देखने-सुनने से, किस प्रकार बचा जा सकता है ? क्या आँसु-कान आदि को बन्द रखना चाहिए ? इसका उत्तर यह है कि सामने आगे हुए रूप को न देखना, या कान में पड़े हुए शब्द को न सुनना, यह वास्तव में अशक्य है, इसके लिये आँसु-कान आदि बन्द रखने की जरूरत नहीं है । किन्तु ऐसे समय में ब्रह्मचारी को, अपने में राग द्वेष न होने देना चाहिए और धस्तु स्वरूप का तत्व चिन्तन करना चाहिए ।

सर्वविरति ब्रह्मचर्य व्रत का, पूर्णतया पालन तभी माना जाता है जब शरीर व माथ ही, मन और वचन पर भी सयम मन सयम । रक्खा जाय । केवल शरीर से ही अब्रह्मचर्य का सेवन न करना, सर्वविरति ब्रह्मचर्य नहीं

हैं, किन्तु मन वचन और काय इन तीनों से अमृतद्वय का सेवन न करना चाहिए। यन्त्रि, शरीर की अपेक्षा मन पर अधिक समय रखने की आवश्यकता है। क्योंकि —

मन एव मनुष्याणां कारणं बध मोक्षयो ।

मन ही मनुष्य के द्वेषे पाप-बन्ध या मोक्ष का कारण है ।'

बन्धाय विषयासक्तं मुक्तौ निर्विषयं मनः ।

सूत्रि ।

विषयाम्बु मन हा पाप-बन्ध का कारण है और विषुद्ध मन, मोक्ष का कारण है ।'

इन्द्रियें दुर्बलियों में मन को साथ लेकर ही प्रवृत्त होती हैं। यदि मन, इन्द्रियों का साथ न दे, तो इन्द्रिय—चाहने पर भी दुर्बलियों में प्रवृत्त नहीं हो सकती। कदाचिन् इन्द्रियों को दुर्बलियों में प्रवृत्त न होने दे, तब भी यदि मन से दुर्बलियों का चिन्ता करना है तो वह अमृतद्वय का पाप भी प्रसार बाधता है जिस प्रकार, (शास्त्र की कथा के अनुसार) तदुलमन्त्र, प्रकट में हिंसा न करके भी हिंसा का पाप बाधता है। गीता में कहा है —

कर्मेन्द्रियाणि सयस्य, य आस्ते मनसा स्मरन् ।

इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा, मिथ्याचार स उच्यते ॥

अध्याय १ ११

'कर्मेन्द्रियों को रोक कर मन से विषयों का विग्नन करने वाला मूढ़ात्मा, मिथ्याचारी ( पाखण्डी ) कहलाता है ।'

आत्मा के विनाश का कारण श्रुतात हुए, गीता में कहा है -  
 ध्यायता विषयान्पुस सङ्गस्तेषूपजायते ।  
 सङ्गसञ्जायते काम कामात्क्रोधाऽभिजायते ॥  
 क्रोधाद्भवति समाह सम्मोहात्स्मृति विभ्रम ।  
 स्मृति भ्रगाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्मण्ययनिं ॥

अध्याय ११

विषयों का ध्यान करते रहने पर, विषयों से स्नेह हो जाता है और फिर उनके पाने की इच्छा—काम की उत्पत्ति होती है इस काम से ही क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अज्ञान उत्पन्न होता है अज्ञान से स्मृति नष्ट होती है स्मृति नष्ट होने से बुद्धि भ्रष्ट होती है और बुद्धि भ्रष्ट होने पर सत्यानाश हो जाता है ।'

इस प्रकार, आत्मा के पतन का कारण, मन में विषयों का ध्यान करना—विषयों का चिन्तन करना ही ठहरता है। इसलिए ऋषिचारी को, मन पर समय रखने का विशेष आग्रह्यता है।

मन को किसी भी समय काय से खाली रखना, ब्रह्मचर्य व्रत की जोरमें में डालना है। मन को जब भी कोई कार्य न होगा, यह तभी बुरे विचार करने लगोगा। बुरे विचार ही पाप का कारण है। ससार में कहायत है कि 'बश में किए हुए भूत को जब रोइ काम नहीं घताया जाता तब वह भूत, उस वग करने वाले के रक्त-मौम को ही खा जाता है।' ठीक इसी प्रकार, जब मन को कोई काम नहीं रहता, तब वह हृदय के सद्बिचारा ना—मनुष्य के गुणा

का भक्षण करने लगता है। इसलिए मन को प्रत्येक समय किसी न केमी सद्वर्गा में लगागे रखना उचित है।

ब्रह्मचर्य को रक्षा के लिए, अधिक भोजन करना बर्ग है। जीवन के लिए जितना भोजन आवश्यक है उससे किंचित भी अधिक भोजन, ब्रह्मचारी को न करना चाहिए। अधिक भोजन से, इन्द्रिया में विकार उत्पन्न होता है, जो ब्रह्मचर्य का नाशक है। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए थोड़ा भोजन ही अच्छा है। विद्वानों का कथन है —

स्वल्पपाटार सुखावह ।

थोड़ा भोजन सुखप्रद है ।

इस कथन का अर्थ यह हुआ, कि अधिक भोजन दुःखप्रद है। अधिक भोजन केवल ब्रह्मचर्य के ही लिए नही, किन्तु प्रत्येक दृष्टि से हानिप्रद है। चाणक्य-नीति में कहा है —

अनारोग्यमनायुष्य, स्वर्ग्य चाति भोजनम् ।

अपुण्य लोकविद्विष्ट तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥

अति भोजन से अस्वस्थता बढ़ती है, आयुष्य क्षीण होता है, अनेक रोग पैदा होते हैं, पाप कम में प्रवृत्ति होती है और लोगों में निंदा होती है। इसलिए अधिक भोजन करना वर्जित है ।

ब्रह्मचर्य की रक्षा के उपाय बताते हुए प्रश्न व्याकरण सूत्र में कहा है —



नो पाण भोयणस्स अइमायाए आहार इत्ता ।

‘ब्रह्मचारी प्रमाण से अधिक भोजन पानी न आवे विये ।’

ब्रह्मचारी को, अधिक भोजन वदापि न करना चाहिए । इसी प्रकार वह भोजन भी न करना चाहिए जो गरिष्ठ, कामोत्तेजक शक्ति-वद्धक और खटा, मीठा, चरपरा आदि स्वाद विशेष लिण हुय हो । ब्रह्मचारी हटना, थोड़ा, निरस और मर्या भोजन ही करता है । प्रश्न व्याकरण सूत्र में, ब्रह्मचर्य की जो नौ गुणित्यें बताई गई हैं, उनमें से एक गुणित्य, सरस भोजन न करने की ही है और वह इस प्रकार है —

नो पणोय रस भोई ।

ब्रह्मचारी रस प्रणीत भोजन न करे ।’

पुस्तका के अनुसार, बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा था कि ‘एक बार हटना आहार करने वाला महात्मा है, दो बार सम्भक्त कर यानी थोड़ा २ आहार करने वाला, बुद्धिमान् और भाग्यवान् है और इससे अधिक खाने वाला महा मूर्ख, अभाग्य और पशु क भी पशु है ।’

ब्रह्मचारी का ऐसे पदार्थों का भी सबन नहा करना चाहिए जो मादक हों । मादक-द्रव्यों से बुद्धि नष्ट होती है और बुद्धि न होने पर समस्त दुष्कर्मा का होना सम्भव है । जैसे—चा, गॉजा, भद्र, चरस, अफीम, शराब, तम्बाखू, धीड़ी, सिगरेट, चुरुट आदि

तशा करने वाले समस्त पदाथा की गणना, मादक-पदार्था या मद म  
 है। वैयक प्रयो में कहा है —

बुद्धि लुम्पति यद् द्रव्य मदकरि तदुच्यते ।

जिन पदार्थों से बुद्धि नष्ट होती है, वे सब मादक पदार्थ हैं ।

इसलिये ब्रह्मचारी को ऐसे पदार्था के सेवन से भी हमेशा  
 बचते रहना चाहिये ।

ब्रह्मचारी को, शृङ्गार करना मना है। शृङ्गार में स्नान, दम्न

अशृङ्गार

धानन, तल कुन्नेल का लगाना, अशुद्ध कपड

और आभूषणादि पहनना हैं। प्रश्न व्याकरण

सूत्र में कहा है —

किते अण्हाणग अद्रव धावण सेय मल जटल धारण

मूणवय केसलोपय खम दम अचेल गशनुप्पिवास

‘ब्रह्मचारी इन नियमों का पालन अवश्य करे। स्नान और दम्न  
 धावन न करे यदि पसीना हो तब भी मैल मिश्रित पानी से युक्त शरीर  
 रखे, मौन रहे, निरवक बात चीत न कर, केशों का छुवन करे, तथा और  
 भी जो कष्ट हों, उन्हें जमा सहित सहन कर, आमा का दमन करे और  
 अल्पवस्त्री रहे, जुपा तथा सहन कर कायवता धारण कर, गर्मी सर्दी  
 सहन करे, भूमि अथवा काष्ठ शय्या पर शयन करे। मित्रा के लिये गृह  
 स्थों के घर में प्रवेश करने पर आहार प्राप्त हो वा न हो सम्मान हो  
 अथवा अपमान हो, निन्दा हो वा प्रशंसा हो सभी अवस्थाओं में सम-  
 भाव, मन्दिर दान आदि दत्ता मिले हुए कष्टों को सहन करे। नियम

सद्गुण और विनय का आचरण करे। ऐसा करने से ब्रह्मचर्य स्थिर रहता है।

इस प्रकार ब्रह्मचारी को अन्य नियमों के साथ ही स्नान दन्त धावन आदि शृंगार न करने का नियम भी बताया गया है। अन्य प्रथमारा ने भी ब्रह्मचारी के लिये ऐसे ही नियम बताये हैं। जैसे —

मल स्नान सुगन्धार्थं स्नान दन्त विशोधनम् ।  
न कुर्याद् ब्रह्मचारी च तपस्वी विधवा तथा ॥

विद्यामहिता शिवपुराण ।

मल से शुद्धि पाने के लिए या सुगन्धित द्रव्य का सेवन करके स्नान करना दातुन मज्जन आदि करना, ब्रह्मचारी तपस्वी और विधवा को उचित नहीं है।

सुखशैत्या नववस्त्र, ताम्बूलस्नानमदनम् ।  
दन्तकाष्ठसुगन्धच, ब्रह्मचर्यस्य दूषणम् ॥१॥

महाभारत शांति पर्वणी

'कोमल सुख शरणा, नवीन चमकीले भङ्गीले वस्त्र ताम्बूल, स्नान, सुधुषा, दातुन और सुगन्ध का सेवन ये सब ब्रह्मचर्य के लिये दूषण है। इनके सेवन से ब्रह्मचर्य दूषित हो जाता है।

वर्जयेत् मधु मांस गन्ध मात्यादि वास्वप्नांजनाभ्यञ्जन  
यानापानच्छत्र काम व्राथ लोभ माह वाय वादन स्नान दन्त  
धावन हर्ष नृत्य गीत परिवाद भयानि ।

गौतम स्मृति ।

ब्रह्मचारी, मधु मांस मांस, फूलमाछा दिन में शयन, अथवा उबटन सवारी, जूता, छाता काम क्रोध खेम मोह वाता बजाना, स्नान दादून, प्रमदता, नाच, गाना; निद्रा और भय को त्याग दे ।

यही बात मनुस्मृति में भी कही गई है । उत्तराध्ययन सूत्र में ब्रह्मचारी के लिए विशेष रूप से कहा गया है कि —

विभूष परिचञ्जजा सरीर परिमण्डन ।  
बभचेर रथो भिक्षु सिंगारत्थ न धारण ॥

उत्तराध्ययन सूत्र अध्याय० १६ वां

ब्रह्मचर्य में रत साधु, शरीर मण्डन अर्थात् शरीर नख, दाँत आदि का सस्कार करना—और शृङ्गार वस्त्रादि से शरीर को शोभित करना सघषा प्रकार से त्यागे ।'

ब्रह्मचारी ऐसे स्थान का सेवन भी कदापि न करे—अर्थात् ऐसे स्थान पर न रहे, जहाँ स्त्रियों का निवास या आवागमन हो । प्रश्न व्याकरण सूत्र में ब्रह्मचर्य की नौ गुणियों में से एक गुण्टि इसी विषय में है, जो इस प्रकार है --

निवास ।

नोइत्थी पसु पडग ससत्ताणि सिउजा  
सणाणि सेवित्ता भवइ ।

'जिस स्थान पर स्त्री, पशु, या मनुष्य रहते हों, उस स्थान पर, ब्रह्मचारी निवास न करे ।'

स्त्री के साथ पञ्चात में निवास करना भी ब्रह्मचर्य के लिए घातक है। एकान्त में रहने में, कुभाषणाओं का जमाने और ब्रह्मचर्य परिलक्षित होने का भय रहता है। चाहे कोई कितना ही दृढ़ प्रतिज्ञा क्यों न हो। एकान्त वास ब्रह्मचर्य का घातक ही है।

ब्रह्मचारी को, ऐसी पुस्तकें भी कदापि न पढ़नी चाहिए जिनसे काम विकार की जागृति हो, मन या इन्द्रियें दुर्विषयों की ओर झुकेँ अथवा उनकी इच्छा करें। इस

अध्ययन।

प्रकार का अध्ययन भी ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा से भ्रष्ट करने में समर्थ है। ब्रह्मचारी के लिए निरोपन धर्म-ग्रन्थों का ब्रह्मचारियों की कथाओं का और संसार की ओर से वैराग्य उत्पन्न करने वाली, संसार की नश्वरता बतलाने वाली तथा संसार पर दुर्विषयों से घृणा उत्पन्न करने वाली पुस्तकों का अध्ययन। लाभ प्रद है। ऐसे अध्ययन से ब्रह्मचर्य की रक्षा में बहुत सहायता मिलती है।

ब्रह्मचारी, कामी या व्यभिचारी का मङ्ग कदापि न करे। उसे लोगो की संगति से, कभी न क

संग।

ब्रह्मचर्य का नष्ट होना सम्भव है। संगति।

प्रभाव पड़ता ही है। विद्वानों का कथन है —

कामिनां कामिनीनाञ्च सगात्कामी भवेत्पुमान् ।

सूत्रि ।

कामी पुरुष अगर भोगवस्ती-स्त्री के साथ रहने वाछा भी, कामी न जाता है।

मनिये ब्रह्मचारी को ऐसी सगति से मदैव बचत रहना चाहिये, निनसे कामोत्पत्ति और ब्रह्मचर्य नष्ट होन का भय रहता है।

ब्रह्मचारी को, स्त्रियों का परिचय न बढान देना चाहिये, न अपने पास अधिक समय तक बैठा कर धार्मालाप ही करना चाहिये। प्रश्न व्याकरण सूत्र में, ब्रह्मचर्य की नौ गुणि बतता हुये कहा है —

नो इत्यौण सेविता भवइ ।

ब्रह्मचारी स्त्री सेवन न कर ।'

नो इत्यौण इन्द्रियाणि मणाहराइ रमाइ

आलोइत्ता निजभाइत्ता भवइ ।

'ब्रह्मचारी, स्त्रियों के मनाहर और मनयोग बर्गों का व्यवहार न करे, न प्रशसा ही कर ।'

स्त्रियों के देखने से भी, ब्रह्मचर्य के लिए बड २ अनर्थ संभव हैं। शास्त्र में, यह बात नहीं मिलती कि मणिरथ पहले से ही दुराचारी था। मदनरेखा पर भी उसकी कुदृष्टि उसको देखने से पूर्व न थी, किन्तु उसने जय से मयखरहा को देखा, तभी स उसकी कुदृष्टि मदनरेखा पर हुई। उस, देखने मात्र से होने वाली कुदृष्टि का परिणाम यह हुआ कि उसने मदनरेखा के लिये, अपन छोटे भाइ निसको उसने आपद्-पूवक युवराज बनाया था—मार हाला और अंत में स्वयं को भी भरना पड़ा। इसलिये ब्रह्मचारी को, न तो स्त्रियों को देखना ही चाहिए, न उनसे परिचय ही बढाना चाहिये।

अन्य ग्रन्थकारों ने भी ब्रह्मचारी को, स्त्रियों से परिचय  
घटाने से रोका है। जैसे —

अविद्यासमल लोके १ विद्यासमपि वा पुन ।  
ममादायुत्पथ नेतु काम क्रोध वशानुगम् ॥१॥  
मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा न विविक्तासना भवत् ।  
बलवानिनिन्द्रियग्रामो विद्यामसपि कर्षति ॥२॥

मनुस्मृति अ० २

'मैं विद्वान् या जितेन्द्रिय हूँ, ऐसा समझकर स्त्रियों के समीप  
न बैठना चाहिये, क्योंकि चाहे विद्वान् हो या मूर्ख, वेद कथम से काम  
क्रोध को बशीभूत शरीर को स्त्रियों कुमारा पर लेजाने में समर्थ हैं। इस  
लिये चाहे माता हो बहन हो या पुत्री हो, इनके साथ ही एकान्त स्थान  
में न बैठे; क्योंकि इन्द्रियों का बलवान् समूह नीति रीति से चर्कर  
वाले पुरुष को भी अपने पथ से विचछिन्न कर देता है।'

ब्रह्मचारी को स्त्रियों से परिचय न करने का उपदेश देते  
हुए शास्त्र में कहा है —

दृश्यपाप पलिच्छिन्नाकननास विगपिष्य १  
अवि वास सय नारि बभयारी विवज्जण ॥

दशवैकाहिक सूत्र अ० ८ व

जिसके हाथ पाँव टूटे हों नाक कान भी कटे हुए हों और जो  
अवस्था में भी सौ वर्ष की हो ऐसी स्त्री के साथ भी ब्रह्मचारी परिचय  
न करे न उसके साथ एकान्त में रहे।'

प्रेमी स्त्री भी, पुरुष के हृदय को और प्रेमा पुरुष भी स्त्री के हृदय को, विचलित करने में समर्थ हो सकता है, अन्धरी स्त्री और अच्युत पुरुष की तो बात ही दूसरी है। ब्रह्मचारी को स्त्रिया के परिचय से बचना ही श्रेयस्कर है। पूज्य श्री उदयसागरजी महाराज भी कहा करते थे।

गढ़ के पासे डुगरी, कदियक गढ़ को भग ।  
साधू पासे स्त्री, या ही बड़ो कुसग ॥  
या ही बड़ो कुसग भग ता शील पे होसा ।  
बैठ नारि क पास मून की पूजा खोसी ॥  
शीलादिक आचार क पालन से मन मागा ।  
नाथ कहे रे बानकाँ ये जोग को रोग लागा ॥

इसलिये ब्रह्मचारी को, स्त्री-परिचय से ही बचना चाहिए ।

सर्वप्रगति ब्रह्मचर्य प्रत के आराधन को, स्त्रिया के प्रति मातृ,

पुत्री और भगिनी भाव रखना, बहुत ही पित

कारी है । धर्म से विंचित भी प्रेम करने वाल

के हृदय में, माँ, बहन और लडकी के लिए

कोई विकार भावना नहीं होती । हाँ, निन्होंने मनुष्यता को ही

तिलाँनलि दे दी है, जिनमें से मनुष्यत्व ही निकल गया है, स्त्री

तो बात ही अलग है । ऐस लोग माँ, बेटी और बहन तो क्या,

पशुओं से भी दुष्कर्म करने से नहीं चूमते ।

मातृ पुत्री और  
भगिनी भाव ।



मातृ, पुत्री और भगिनी भाव, ब्रह्मचर्य का रक्षा का एक सर्वोत्कृष्ट साधन है। जो स्त्रियों आयु में षड़ी हैं उनके प्रति मातृ भाव, जो ममान हैं, उनके प्रति भगिनी भाव, और जो छोटी हैं उनके प्रति पुत्री भाव रखन में, हृदय में विकार उत्पन्न नहीं, होता। मातृ पुत्री और भगिनी भाव का क्या माहात्म्य है, इसके लिये एक दृष्टान्त दिया जाता है।

एक लग्गारा (लाग्य की चूड़ियों बनाकर बेचनावाला) अपनी गरी पर, चूड़िये लाए हुए चला जा रहा था। तब धीरे चलता था, इसलिये लग्गारा उसे हॉकत हुये कहता जाता था 'मों! चल!' 'बहन चल!' 'बेटी! चल!' लग्गारा के इस कथन को सुन कर, मार्ग चलनेवाले लोग उससे कहन लगे कि—तू कैसा मूर्ख है! गधी को भी मों, बहन और बेटी का कहता है? कहीं गरी भी मों, बहन, या बेटा हो सकती है? लग्गारा की बात सुनकर, लग्गारा कहने लगा—भाइ, यद्यपि गरी होन के कारण यह मेरी मों, बहन या बेटा नहीं हो सकती, लेकिन स्त्रीजाति के प्रति मों, बहन और बेटी की भावना को जन्म देनेवाला तो हो सकती है न? यदि मैं, इस गधी को मातृ पुत्री और भगिनी भाव से न देखूंगा, तो स्त्रियां क प्रति मेनी भावना क्या रख सकूंगा? मैं, लग्गारा हूँ। स्त्रियों को चूड़ियों पहनाना मेरा काम है, इसलिये थडे थडे घरों में मेरा प्रवेश है। नित्य ही, सुन्दर सुन्दर स्त्रियों के कोमल कोमल हाथ, चूड़ियों पहनाने के लिये, मेरे हाथों में आया करते हैं। यदि मैं, उनके प्रति मातृ, पुत्री और भगिनी भाव न रखूँ—किसी प्रकार की शुभावना रखूँ—तो मैं, लोग

में से अपना विश्वास भी खो दू, तथा व्यवसाय से भी हाथ धो बैठूँ। मैं, इस गधी को भी, बहन, माँ और बेटे के समान मानता हूँ, तभी अन्य स्त्रियों को भी, बहन, माँ और बेटे के समान मान सकता हूँ। लम्बारे की बात सुनकर, सबको चुप हो जाना पड़ा।

तात्पर्य यह, कि सब स्त्रियों के प्रति मातृ, भगिनी और पुत्रा मात्र रखने से, स्त्रियों के प्रति, बुभारनायें उत्पन्न ही नहीं होती। इस प्रकार ब्रह्मचर्यघत की रक्षा होती है।

वीर्य एक ऐसी वस्तु है, जिस, बिना उपाय के शरीर में रोक रचना—पचा जाना—बहुत कठिन कार्य है। रक्षा करने के लिये, उपायों की आवश्यकता है। इस प्रकार के

उपवास

उपायों में से एक उपाय, उपवास या तपस्या भी है। जैनशास्त्रों में, तप का प्रतिपादन इमलिण भी विशेष रूप से किया गया है, कि उसमें ब्रह्मचर्यघत सुरक्षित रहता है और ब्रह्मचर्य के बाधक दोष नष्ट हो जाने हैं। श्रीउत्तराख्ययन सूत्र में आहार-त्याग करने के छः कारणों में एक कारण यह बतलाया है कि ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये आहार छोड़ दें। इस बात का समर्थन, अन्य ग्रन्थकार भी करते हैं। जैसे—

आहारान् पचति शिखी दोषान् आहारं वर्जितम् ।

आयुर्वेद ।

‘आहार को, शक्ति पचाती है और दोषों को, उपवास पचाते हैं’

ध्यान । ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए, ध्यान की भी आवश्यकता है। ब्रह्मचर्य की रक्षा का ध्यान भी एक प्रकार का ध्यान है। ब्रह्मचर्य का वर्णन करते हुए, प्रश्न-याचरण सूत्र में कहा है—

भाण्डव कषाड्मुक्तय मज्जुष्प दिण्कानिद  
ध्यान ही ब्रह्मचर्य धन की रक्षा करने वाला कषाट है।'

मनुस्मृति में कहा है—

दहन्ते ध्यायमानानां धातूना हि यथा मला ।  
सथेन्द्रियाणां दहन्ते दोषा प्राणस्य निग्रहात् ॥

'जिस प्रकार अग्नि में डालकर तपाने से धातुओं का मूल भस्म हो जाता है, वही प्रकार, प्राणायाम करने से इन्द्रियों के सब दोष भस्म हो जाते हैं।'

ब्रह्मचारी का जीवन, अनियमित भी न होना चाहिए। अनियमित जीवन, प्रत्येक दृष्टि से हानिप्रद है। अतः ब्रह्मचारी का जीवन नियमित हो। उसके प्रत्येक कार्य, नियमित रूप से ठीक समय पर हों। कोई समय, ठीक या खाली न जावे, न कोई कार्य, असमय पर ही हो। अनियमितता से बचे रहने पर ही ब्रह्मचारी का ब्रह्मचर्य स्थिर रहता है।

ब्रह्मचारी के लिये सत्र से उड़ा नियम ईश्वर प्रार्थना है, नियमित रूप से प्रातः सायं ईश्वर की प्रार्थना, ब्रह्मचर्य का रक्षा के

ईश्वर का यश ।

एक श्रद्धा साधन है। ईश्वर प्रार्थनादि नियमों का पालन करने से, ब्रह्मचर्य के साथ ही दूसरे कार्यों की सफलता में भी सहायता मिलती है।

इन नियमों के सिवा और भी बहुत से छोटे-छोटे नियम पस हैं जिनका पालन करने पर तो ब्रह्मचर्य की रक्षा होती है और पालन न करने पर ब्रह्मचर्य दूषित हो जाता है। जैसे कि ब्रह्मचारी को श्रोतना विद्रोना नरम न रखना, कड़ा रखना, मुलायम या चटक मन्त्र वाले वस्त्र न पहनना, चित्रों के चित्र न देखना और न रखना आदि। इस प्रकार के समस्त नियमों का पालन करने वाला ही, अपने व्रत को निर्दोष रूप में पाल सकता है।

(६)

## स्त्रियां और ब्रह्मचर्य ।

किन्नामोनि रमा रूपा ब्रह्मचर्यं तपस्विनी ।

‘तल छत्रमी रूपी स्त्री क तप बुद्ध भी कठिन नहीं है, जो ब्रह्मचर्य व्रत की तपस्विनी है।’

बुद्ध लोगों का कथन है कि स्त्रियों को, पूर्ण ब्रह्मचर्य न पापना चाहिये, लेकिन जैन शास्त्र इस कथन के समर्थक नहीं, अपितु

जैन शास्त्रों में पुरुष ब्रह्म  
चर्य पालन के लिये  
स्त्रियों का पालन ।

विरोधी हैं। जैन शास्त्रों में ब्रह्मचर्य का जैन  
उपदेश पुरुषों के लिये है, यैसा ही उप  
स्त्रियों के लिये भी है। जैन शास्त्रों का  
उपदेश आदर्श-रहित नहीं किन्तु आ

महित है। भगवान् ऋषभदेव की, माद्री और सुन्दरी माद्री कन्या  
ने, कर्म भूमि के प्रारम्भिक युग में ही पूरा ब्रह्मचारिणी रह  
स्त्रियों के लिये ब्रह्मचर्य पालन करने का आदेश दे दिया था  
उन्नीसवें तीर्थङ्कर भगवान् मल्लिनाथ, स्त्री ही थे। स्त्रा हान हुए  
उन्होंने अस्पृह ब्रह्मचर्य का पालन किया था और तीर्थङ्कर-पद प्र  
किया था। इसी प्रकार राजमती, चन्दनशाला आदि मनिर्या  
भी अस्पृह ब्रह्मचर्य का पालन किया है। मारसरा यह कि 'स्त्रि  
ब्रह्मचर्य न पालें, ब्रह्मचारिणी न ह्य' यह बात, जैन शास्त्रों के सम  
तिर्यक है। जैन शास्त्र इस विषय में स्त्री और पुरुष दोनों  
समान अधिकारी बताते हैं। आयु, देस, काल आदि किसी प्र  
का प्रतिबन्ध नहीं लगात। ये कहते हैं कि चाहे स्त्री हो या पुरु  
ब्रह्मचर्य का पालन जो भी करे, इससे होने वाला लाभ को वही प्र  
कर सकता है।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों ब्रह्मचर्य का पालन भी अर्थात्  
सुचारु-रूप से कर सकती हैं। जैन शास्त्रों में ऐसे कई उदाहरण  
स्त्रियों की ब्रह्मचर्य में मिलते हैं जिनमें स्त्रियों ने ब्रह्मचर्य से पार  
रहता। होते हुये पुरुषों की ब्रह्मचर्य पर स्थिर कि  
जैस कि—सती राजमती ने रथनेमि को

रोगा नाम्नी श्राविका ने, स्कूलभद्रजी के एक गुरु भाई को ब्रह्मचर्य से पतित होने से बचाया था ।

तात्पर्य यह कि ब्रह्मचर्य, पुरुषों ही के लिये नहीं है किन्तु स्त्रियों के लिये भी वैसा ही आवश्यक है । स्त्रियाँ भी पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर सकती हैं ।

सर्वत्रिरति ब्रह्मचर्य-व्रत की आराधना के लिये, स्त्रियों को भी उन नियमों का पालन करना आवश्यक है जो पुरुषों के लिए पित्रले प्रकरण में बताये गये हैं । हाँ, यह अन्तर अवश्य होगा कि जहाँ ब्रह्मचारी के लिये स्त्रियों का साथ और उनकी प्रशंसा आदि वर्ज्य है, वहाँ ब्रह्मचारिणी को पुरुषों का साथ, उनकी कथा आदि सर्व वर्ज्य समझना चाहिए और जहाँ ब्रह्मचारी को स्त्रियों से बचने का नियम बताया गया है, वहाँ ब्रह्मचारिणी को पुरुषों से भी बचने का नियम समझना चाहिए । शेष सब नियम स्त्रियों के लिए भी जैसे ही हैं जैसे पुरुषों के लिए हैं और जो बताये जा चुके हैं ।



(७)

## विवाह !

— ❁ —

तृषा शुष्यस्यास्ये पिबति सलिल स्वादु मुग्धि  
क्षुधार्तं सन् शालीन कवन्नयति शाकादि बलितान् ।  
प्रदीप्ते कामाग्नीं सुदृढं तर माग्निप्यति बधूम्  
मगीकारा व्याधे सुखमिति विपर्यस्यात् जन ॥

मनु० वैराग्यशतक ।

'जब मनुष्य का कण्ठ प्यास से सूखने लगता है तब वह शीतल, मुग्धियत और निमज्ज जल पीकर, तृषा के दुःख से मुक्त होता है, जब भूख मरती है तब शाकादि के साथ भोजन करके क्षुधा का कष्ट मिटाना है ऐसे ही जब कामाग्नि प्रज्वल होती है तब सुन्दर स्त्री को हृदय से खगाटा है, इस प्रकार जल भोजन और स्त्री एक एक रोग की दवा है ललित लोगो न उदर ही मान रहा है । अर्थात् लोग इन दवाओं में भी सुख मानते हैं ।

मनुष्य उत्तम उत्तम  
क्यों है ?

मनुष्य शरीर, सब शरीरों से उत्तम क्यों माना  
जाता है, इसका लिये कहा है —

आहार निद्रा भय मैथुनच सामान्यमेतत् पशुभिर्नैराणां ।  
धर्मोहितेषामधिका विशेषा धर्मेणहीना पशुभिः समाना ॥

‘आहार, निद्रा, भय और म्रैधुन की दृष्टि में तो मनुष्य और पशु समान ही हैं, लेकिन मनुष्य में धर्म है इसी से वह पशु की अपेक्षा बड़ा है, अन्यथा घमहीन मनुष्य पशु के ही समान है।’

मनुष्य में धर्म है, इसीलिए वह मनु प्राणियों में उत्तम माना जाता है, लेकिन आहारादि में ही धर्म नहीं है। यदि आहारादि में ही धर्म होता तो उक्त श्लोक में धर्म को आहारादि से भिन्न न बताया जाता। इस श्लोक में, धर्म को आहारादि से भिन्न बतलाया गया है, इसलिये यह देखना है कि धर्म क्या है, जिसके होने पर मनुष्य मनु प्राणियों में उत्तम माना जाता है।

इस श्लोक और परलोक में जिसके द्वारा उन्नति हो, उसीका नाम धर्म है। भगवान् महावीर ने धर्म के सूत्र धर्म और चारित्र्य धर्म ये दो भेद बताये हैं। इनका विवेचन यहाँ आवश्यक नहीं है। यहाँ तो केवल यह बताना है कि भगवान् ने चारित्र्य धर्म की आराधना के लिये जो पाँच व्रत बताये हैं उनमें से चौथा व्रत ब्रह्मचर्य है। अध्यात्म ब्रह्मचर्य का पालन करना धर्म है। इसका पालन करने पर ही मनुष्य मनु प्राणियों में उत्तम हो सकता है। भोग भोगने, अनव्यय का सेवन करने के कारण, मनुष्य मनु प्राणियों में उत्तम नहीं कर सकता।

आत्मा, जब निगोद में पड़ा था तब इसे यह भी मालूम नहीं था कि मैं जीव हूँ। पुण्य के बढ़ने से यह आत्मा, निगोद से निकल कर, अनेक योनियों को भोगता हुआ, अनेक प्रकार के कष्ट



सहता हुआ हम मनुष्य-जन्म को प्राप्त कर सका है। आत्मा पूर्व भोगी हुई अनेक योनियों में दुर्विषय भोग को ही इष्ट मान रहा था, इसलिए इसने उन्हें खूब भोगा, लेकिन न तो इसे उन भोगों की ओर से वृत्ति ही हुई, न यह बार बार व जन्म-मरण में ही मुक्त हुआ। उस समय तो इसको ऐसा ज्ञान न था—इसकी बुद्धि विकसित नहीं थी, यह धर्म को जानता ही न था। लेकिन यदि मनुष्य-जन्म पाकर भी, यह पशु-योनि में भोग जाने वाले भागों का भोगे, उन्हीं में सुख माने, जन्म-मरण से मुक्त होने का उपाय न करे तो इसकी अधिष्ठित भूल—अज्ञानता या मूर्खता और क्या होगी जो भोग पशु-शरीर में भी भोगे जा सकते हैं उनके भोगने के लिए इस मनुष्य-शरीर को नष्ट करना कौनसी बुद्धिमानी है? केवल चिन्तने में आ सकने वाली मिठाई के बदले में, चिन्तामणि ऐसा देन की मूर्खता के समान क्षणिक, अस्थायी और हर प्रकार की हानि करने वाले दुर्विषय भोग में, उच्छिष्ट मनुष्य-जन्म को देन की मूर्खता से अधिक मूर्खता और क्या होगी? मनुष्य-शरीर दुर्विषय भोग के लिये नहीं है, किन्तु उन्हें त्यागने के लिये है। मनुष्य-जन्म प्राप्त होने का वास्तविक लाभ तभी है जब, दुर्विषय भोग त्याग कर ब्रह्मचर्य रूपी तप का अनुष्ठान किया जावे। भगवान् ऋषभदेव अपने पुत्रों को उपदेश देने हुये कहा था —

नाय देहो देह भाजांशुलोके,

कष्टान् कामानर्हते विद्भुजांये

तपो दिव्य पुत्रकायेन सत्व,

शुद्धयेद्यस्माद्ब्रह्म सौख्यत्वनन्तम् ॥

भागवत ५ वां स्कंध ५ वां अध्याय ।

'हे पुत्र ! नेहधारियों का वह शरीर दुःखदायी विषय मोग के योग्य नहीं है, क्योंकि दुःखदायी विषय मोग तो, विष्टा आने वाले मारकीय शरीरों को भी सिद्ध ज्ञान है कल्पित, मैं कहता हूँ कि वह शरीर दिव्य तप धरन योग्य है, जिसमें अन्तःकरण शुद्ध होजाता है और अनन्त ब्रह्म सुख प्राप्त होता है '

यद्यपि, मनुष्य जन्म की सफलता और पूर्णतया वर्माचरण्य, तो सर्वप्रति ब्रह्मचर्य के पालन में ही है, लेकिन, सर्वप्रति ब्रह्मचर्य निम्ने चतुर्थ महाव्रत कहा गया है वह तो अक्षर १६ ब्रह्मचर्य गृह-संसार का त्याग ही स्वीकार कर सक्ता है। गृह-संसार में रहते हुए, एसा न कर सकने वाले पुरुष स्त्री को, कम से कम क्रमशः २५ और १६ वर्ष की अवस्था तक तो, अत्यण्ड ब्रह्मचर्य पालना ही चाहिये। इस अवस्था तक अत्यण्ड ब्रह्मचर्य न पालना, अपने आपसे, अवनति, रोग, एव मृत्यु के मुख्य में धकेलना है। स्मृतिकार कहते हैं—

चतुर्थमायुः भाग मुक्तिश्चाऽऽय गुरो कुले ।

अविप्लुत ब्रह्मचर्यो गृहस्थाथममाविशत् ॥

महता हुआ हम मनुष्य-जन्म को प्राप्त कर सका है। आ  
 पूर्व भोगी हुई अनेक योनियों में दुर्विषय भोग की ही श्रेष्ठ  
 था, इसलिए इसने उन्हें खूब भोगा, लेकिन न तो इसे जन  
 श्रेष्ठ से तृप्ति ही हुई, न यह धार धार के जन्म-मरण से  
 हुआ। उस समय तो हमको ऐसा ज्ञान न था—इस  
 विनसित न थी, यह धर्म को जानना ही न था। लेकिन य  
 जन्म पारुष भी, यह पशु-योनि में भोग जाने वाले भ  
 भोगे, उन्हीं में सुग्य माने, जन्म-मरण से मुक्त होन का  
 कर तो हमकी अधिक भूल—अज्ञानता या मूर्खता और  
 जो भोग पशु-शरीर में भी भोगे जा सकते हैं उन  
 मनुष्य शरीर को नष्ट करना कौनसी बुद्धिमाती है ?  
 आन में आ सकने वाली मिठाई के बन्ने में, चिन्तामणि  
 दे देने की मूर्खता के समान क्षणिक, अस्थायी और ह  
 हानि करन वाले दुर्विषय भाग में, उत्कृष्ट मनुष्य-जन्म  
 मूर्खता से अधिक मूर्खता और क्या होगी ? मनुष्य शरीर  
 भोग के लिये नहीं है, किन्तु उन्हें त्यागने के लिये है।  
 प्राप्त होने का वास्तविक लाभ तभी है जब, दुर्विषय भोग  
 ब्रह्मचर्य रूपी तप का अनुष्ठान किया जाये। भगवान्  
 अपने पुरों को उपदेश देते हुये कहा था —

माय देहो दह माजांशुनोके,

कष्टान् कामानर्हते

तथा दिव्य पुत्रकायेन सत्व,

शुद्धयेद्यस्माद्ब्रह्म सील्यत्वनन्तम् ॥

भागवत २ वां स्कंध २ वां अध्याय ।

ह पुत्र ! दृढधारियों का यह शरीर दुःखदायी विषय भोग के योग्य नहीं है, क्योंकि दुःखदायी विषय भोग तो, विहा लाने वाले नारकीय जीवों को भी मिष्ट ज्ञान है अतएव, मैं कहता हूँ कि यह शरीर दिव्य तप करने योग्य है जिनमें अन्तःकरण शुद्ध होजाता है और अनन्त ब्रह्म सुख प्राप्त होता है ।

यद्यपि, मनुष्य जन्म की सफलता और पूर्णतया धर्माचरण, तो सर्वविरति ब्रह्मचर्य के पालन में ही है, लजिन, सवविरति ब्रह्मचर्य  
अथ वरक ब्रह्मचर्य  
निसे चतुर्थ महाव्रत कहा गया है वर तो गृह-नसार का त्याग ही स्वीकार कर न करना है। गृह-नसार में रहन हुए, ऐसा न कर सकने वाले पुत्र्य के को, कम से कम क्रमशः २५ और १० यष की अवस्था तक ठे, अग्र-व्रत ब्रह्मचर्य पालना ही राहिये। इस अवस्था तक अस्व-व्रत ब्रह्मचर्य न पालना, अपने आपसे, अनन्त, रोग, एव मृत्यु के दुःख में घकेनना है। स्मृतिकार कहते हैं—

चतुर्थमायुषा भाग मुषित्वाऽऽर गुरो कृते ।

अविप्लुत ब्रह्मचर्यो गृहस्थावनमाविणेत् ॥

‘पूर्णायु का चौथा भाग यानी १० वर्ष में से २५ वर्ष गृहकुल में रहकर, अविप्लव रूप में ब्रह्मचर्य का पालन करे और फिर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे।’

इस प्रकार, कम से कम २५ और १६ वर्ष का अवस्था तक तो, प्रत्येक पुरुष-स्त्री को अरण्य ब्रह्मचर्य का पालन करना ही चाहिए।

२५ और १६ वर्ष की अवस्था जाने पर ही, पुरुष और स्त्री, इस बात के निर्णय पर पहुँचते हैं, कि हम, आयुभर ब्रह्मचर्य पाल सकते हैं या नहीं? अर्थात्, पूरा अरण्य ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार करने की शक्ति, हममें है या नहीं। जो लोग ऐसा करने में समर्थ होते

विवाह कौन करते हैं ?

हैं, वे तो, पूर्ण ब्रह्मचर्य की ही आराधना करते हैं—विवाह कर्मकर्तों में नहीं पँसते। जैसे भीष्म पितामह—लेकिन, जो लोग, समाज में रहते हुए पूरा ब्रह्मचर्य पालन में अपन-आप को असमर्थ देखते हैं, वे वेदाह्न कर लेते हैं, किन्तु दुराचार में प्रवृत्त नहीं होते। यद्यपि जैन

में, पूर्ण ब्रह्मचर्य का ही विधान पाया जाता है, विवाह नहीं पाया जाता लेकिन, नीतिकारों ने, पूर्ण ब्रह्म

के लोगों के लिए विवाह का विधान और में प्रवृत्त होने का अत्यन्त निषेध किया है।

विवाह नहीं करना है, तो ब्रह्मचर्य पालने, जैन शास्त्रों में भी, ऐसा विधान

कहीं नहीं मिलता, कि जो लोग सर्पविरति ब्रह्मचर्य पालन में असमर्थ हैं, विवाह न करन देकर, दुराचार में प्रवृत्त होन किया जाये। हाँ, जनशास्त्रों में, दुराचार प्रवृत्ति का निषेध अशुभ है। ध, ( विवाह न करके—या विवाह करके ) पर त्रा-गमन करन धान का तो दुराचारी कहते हैं, लेकिन विवाह करनेवाले को, दुराचारी नहीं कहते।

जो लोग, नैतिक (यात्रजीवन) ब्रह्मचर्य का पालन करन में समर्थ हैं, दुःखियों में, इन्द्रिय और मन को प्रवृत्त न होन देने का शक्ति रखते हैं, उनके लिए तो, विवाह न करना ही श्रेयस्कर है, लेकिन जा लोग ऐसा करने में असमर्थ हैं, और जिन्हें विवाह न करन पर, दुराचार में प्रवृत्ति होने का भय है, नीतिशास्त्र के समीप, ऐसे लोगों का विवाह कराना, दुराचार में प्रवृत्त होने की अपेक्षा दुःख नहीं, किन्तु अच्छा माना जाता है। हाँ, विवाह को माना जायगा के रूप में। पश्चात्य विद्वान् मनु प्राक्सिम करता है कि 'कामवासना की दशा के रूप में विवाह बड़ी अच्छी वस्तु है कि वह बड़ी है, इसलिए यदि उसका व्यवहार बहुत सम्मान में किया जाये तो अतर्नाक भी है।' इस प्रकार के शब्दों में विवाह को श्रेय दिया गया है, उसमें भर्तृहरि न भी श्रेय देकर है इस प्रकार विवाह, कामवासना रूपी राग को दूर करने में श्रेय प्रियी सुख का साधन नहीं माना जा सकता कि विवाह का प्राशय्यता उहाँ लोगो को होती है कि विवाह का प्राशय्यता

से नहीं मिटा सकते। अर्थात् विवाह केवल वही लोग करते हैं जो कामवासना का, विवेक द्वारा दमन करने में असमर्थ हैं।

कामवासना-रूपी रोग को, विवेक रूपी औषधि से, दबाया जा सकता है। जिनमें इस औषधि के सदुभाज का अभाव या इसकी कमी है, अथवा पूर्ण विवेकी होते हुये भी विवाह सब के लिये आवश्यक नहीं है। पुण्य फलों की निर्जरा करना जिनके लिये आवश्यक है और जो निश्चित बंध में पड़े हुये हैं, वे ही विवाह करते हैं। एक पाश्चात्य विद्वान् का कथन है, कि 'कामवासना व्रतनी प्रयत्न नहीं होती कि जिसका विकर या नैतिक बल से पूर्णतया दमन न किया जा सके। विषयेन्द्रा भी, नींद और भुग् के समान ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसकी वृत्ति अनिवार्य हो।' तात्पर्य यह कि कामवासना का दमन विवेक द्वारा सदुद्धान एवं भावना के बल से किया जा सकता है, इसलिये प्रत्येक के लिये विवाह करना आवश्यक नहीं है।

कभी कोई कह कि 'प्रजापत्ति की दृष्टि से विवाह करना । यदि मय लोग विवाह न करके ब्रह्मचारी होने लगें तो । ही " ऐसे लोगों को यह उत्तर निर्मूल है। अनादि होने के लिये लोग ब्रह्मचर्य का

क्यों ? यदि ब्रह्मचर्य का पालन करने से, संसार शून्य भी हो जावे तो हममें किसी की क्या हानि है ? यदि प्रजोत्पत्ति न भी हुई या संसार का अन्त भी हो गया तब भी हर्ष क्या होगा ? तुम्हें तो केवल यह देखना चाहिये कि हमारा उद्धार, विवाह करने-प्रजा या मनुष्य-संसार बढ़ने से होता है, या ब्रह्मचर्य पालन करने से ? इस विषय में गान्धीजी लिखते हैं—'आदर्श ब्रह्मचारी को, कामेन्द्रा या सन्तानेन्द्रा से कभी जूझना नहीं पड़ता, पत्नी इन्द्रा उसे होती ही नहीं।' महाभारत के अनुसार, भीष्मपितामह न भी यही कहा था कि 'ब्रह्मचारी को संसार या सन्तान की इच्छा नहीं होती, न इनकी उत्पत्ति या उद्वि के लिए वह अपने ब्रह्मवय को ही नष्ट कर सकता है।' इस प्रकार सब लोग के लिये विवाह करना आवश्यक नहीं है, किन्तु जो पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने में असमर्थ हैं अथवा जिन्हें पुण्य फल की निचरा करनी है, वे ही लोग विवाह करते हैं।

आजकल, पाश्चात्य देशों के बहुत से स्त्री पुरुषों में, ये विचार फैल रहे हैं, कि विवाह करने स्वतन्त्रता खोने, किसी एक के होकर रहने और बालक बालिका आदि के पालन पोषण तथा स्त्री आदि के स्थायी व्यय में पड़ने की अपेक्षा यही अच्छा है कि थोड़ी देर के लिए किसी स्त्री या पुरुष से सम्बन्ध कर लिया जावे और कामवासना पूरी करके, उसे त्याग दिया जावे।

ब्रह्मवय न पाकर मरने पर अविवाहित रहने से हानि।



मे नहीं मिटा सकते। अर्थात् विवाह केवल वही लोग करने हैं जो कामवासना का, विवेक द्वारा दमन करने में असमर्थ हैं।

कामवासना रूपी रोग को, विवेक-रूपी औषधि से, दबाया जा सकता है। निम्नमें इस औषधि के सदुभाव का अभाव या इसकी कमी है, अथवा पूर्ण रिजैकी होते हुये भी विवाह सब के लिये आवश्यक नहीं है। पुण्य फलों की निर्नरा करना निम्नरे लिये आवश्यक है और जो निश्चित बंध में पड़े हुये हैं, वे ही विवाह करत हैं। एक पाश्चात्य विद्वान् का कथन है, कि 'कामवासना इतनी प्रबल नहीं होता कि निसका रिजै या नैतिक बल से पूर्णतया दमन न किया जा सके। रिषयेन्द्रा भी, नींद और भूख के समान ऐसा कोई वस्तु नहीं है, निसकी एभि अनिवार्य हो।' तात्पर्य यह कि कामवासना का दमन विवेक द्वारा सदुद्धान एव भावना के बल से किया जा सकता है, इसलिये प्रत्येक के लिये विवाह करना आवश्यक नहीं है।

कभी कोई कह कि 'प्रजापत्ति की दृष्टि से विवाह करना आवश्यक है। यदि मन लोग विवाह न करके ब्रह्मचारी होने लगे तो फिर संसार का ही अन्त हो जावेगा।' ऐसे लोगों को यह उत्तर दिया जाता है कि इन प्रकार की शका निर्मूल है। अनादि होने के कारण संसार का अन्त नहीं हो सकता, न सभी लोग ब्रह्मचर्य का पालन ही कर सकत हैं। कभी थोड़ी देर के लिये ऐसा मान भी प्रजापत्ति और संसार को तुम्हें इतनी चिन्ता

क्यों? यदि ब्रह्मचर्य का पालन करने से, संसार शून्य भी हो जावे तो हममें किसी की क्या हानि है? यदि प्रचोपत्ति न भी हुई या ममार का अन्त भी हो गया तब भी हर्ज क्या होगा? तुम्हें तो क्वल यह देखना चाहिये कि हमारा उद्धार, विवाह करन-प्रना या मनुष्य-संसार घटने से होता है, या ब्रह्मचर्य पालन करन से? इस विषय में गा-गीजी लिखते हैं—'आदर्श ब्रह्मचारी का, कान्हा या सन्तानेन्द्रा से कभी जूमना नहीं पड़ता, पसी इन्डा म्म हाने ही नहीं।' मद्राभारत के अनुसार, भोगमपिनामद न भी यद्वा द्य था कि 'ब्रह्मचारी को ममार या सन्तान का श्रुता नहीं हाने, व इनसी उच्चति या वृद्धि के लिए उह अपन ब्रह्मचर्य का ह्वा न्वा सनता है।' इस प्रकार सब लोगा के लिये विवाह करना आवश्यक नहीं है, किन्तु जो पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करन में असमर्थ हैं, अथवा जिन्हें पुण्य फल की निर्भरा करना ह, व भी ब्रह्मचर्य करत हैं।

आजकल, पश्चात्य देशों के बहुत से आदमी विचार फैल रहे हैं, कि विवाह करके स्वतन्त्रता प्राप्त होकर रहने और सामान्य जीवन में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। पालन-प्रोपण तथा सामान्य जीवन में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। देर के लिए किम् भी होना संभव कर लिया जावे और कामवासना पूर्ण होकर चला दिया जाये।

जैसे लोग सोचते हैं कि 'विषय भोग चाहें स्त्री तथा स्वपति म किया जाय, या परस्त्री तथा परपुरुष से किया जाये, रचनीय नष्ट होने की दृष्टि से तो दोनों समान ही हैं। बल्कि विवाहित जीवन म इस दृष्टि से और अधिक हानि है। क्योंकि स्त्री या स्वपति क साथ तो थोड़ी इच्छा होने पर भी दुर्विषय भोग करते हैं, लेकिन परस्त्री या परपुरुष क साथ तो दुर्विषय तभी भोगेंगे जब कामन्द्र बहुत प्रबल हो जायगा और रोदन स न रुक सकेगी।'

इस प्रकार की युक्तियाँ द्वारा पारशक्त्य देशा क बहुत से लोग विवाहित जीवन का विम्वारिया से बचने के लिए और स्वच्छ रहने के लिये ब्रह्मचर्य न पाल सकेन पर भी अविविवाहित रहना अन्धा समझते हैं। भारत के कुछ लोग भी जैसे ही विचारों क समर्थन हैं और पारशक्त्य लोगों की युक्तियों के साथ ही, यह दलील आर पेश करते हैं कि स्त्री तथा स्वपति के साथ मैथुन करने में भी पाप होता है और परस्त्री तथा परपति के साथ मैथुन करने में भी पाप होता है। फिर विवाह क्या किया जाये? बल्कि विवाह करने म अधिक पाप होता है। क्योंकि विवाह-समय में भी आरम्भ समाप्त होना है तथा विवाह के पश्चात् भी स्त्रीको भोजन, वस्त्र आदि देन म और सम्मान क पालन पोषण, विवाह आदि म आरम्भ-समाप्त होना है। इस तरह आरम्भ समाप्त का पाप, परम्परा पर पड़ता ही जाता है। इसलिए परस्त्री से मैथुन करने की अपेक्षा विवाह करने में अधिक पाप है।' इत्यादि कुतर्क पैदा करते हैं।

इस प्रकार के विचार घात लोग, ब्रह्मचर्य व महत्त्व से तो अनभिज्ञ हैं ही, लेकिन विवाह के महत्त्व को भी नही समझ पाये हैं। व समझते हैं कि विवाह केवल दुर्लभ भोग व लिंग ही है, इसमें शारीरिक विवाह का कोई मूल्य ही नहीं है। अपनी इस समझ पर वे परिश्रिता से विचार नहीं करते। धोनी देर के लिए विवाह केवल विषय भोग के लिये ही मान लिया जाने, तब भी यदि विवाह प्रथा न होती, तो मसार में अशांति का माघ्राय था जाता। मनुष्य स्वभावतः अपने ऐसे प्रेमी के प्रेम में किसी दूसरे का मानी होना नहीं सह सकता, इसलिए एक ही पुरुष को चाहने वाली अनेक स्त्रियाँ, या एक ही स्त्री को चाहने वाले अनेक पुरुष, आपस में बह-लड़ कर मर जाते हैं। श्राव भी सुना जाता है कि एक बेश्या व गले अनेक नर-हत्या होती है। यदि घनी बेश्या किसी एक की होती तो सम्भवतः ऐसी हिंसा का समय न आता। इसी प्रकार विवाह गया न होने पर, मनुष्य उस दाम्पत्य प्रेम से सर्वथा शरित रह जाता, जो विवाहित पति पत्नी में दृष्टा करता है। विवाह की प्रथा का स्थान यदि नैमित्तिक सम्बन्ध को ही प्राप्त होना, तो श्रीगुरुदेव दूर में अपने हा समय तक प्रेम करत, एक-दूसरे की अन्तर्दृष्टि तक परीक्षा करत, जब तक कि विषयभोग नहीं भोगा जा सके तब तक वह विषयभोग भोगने के लिये लाता-शिर है। इस भाग चुकन पर, या इस योग्य न रहने पर, श्रीगुरुदेव की इसी प्रकार उपस्था करते, जिस प्रकार बेश्या व नर-हत्या और जान-शक्ति की बेश्या उपस्था करना है।

और मनुष्य-मात्र के स्वच्छन्द हो जान पर महाभूमि, तथा और  
 प्रेम का भी मद्भाग न रहता। स्त्री-पुरुष अवन आय का उम समय  
 तक ता सुखी मानन रहत है, जब तक कि उनमें विषयभोग भोगने की  
 शक्ति है। लेकिन इस शक्ति कम रहने पर जीवन दुःखमय,  
 गताराहीन एवं पश्चान्ताय वृत्त होता है। जो कि संसार में जन्म-मरण  
 ( मन्ताय प्रसव ) का प्रेम, तथा, महाभूमि, अदिमा आदि के  
 प्रसार का हा वद्वन भेय है। विवाह प्रथा न होने पर, मन्तान की  
 जयावधारी स विम प्रकार पुरुष यथना चाहत उमा प्रचार विधि  
 भी बनना चाहती। परिणामत मा ता भूगु इत्या होता या दाप  
 टया होता, या मन्तान-निगार के वृद्धिम उपायो स वाप विग  
 ताता आर भीरे पीरे जना विग के माध ही दया, प्रेम, अदिमा,  
 महाभूमि आदि का भी लोप हा जाता आर संसार के प्रसार का भी।

विवाह प्रथा का स्थान यदि स्त्री-पुरुष का स्वच्छन्दता को  
 प्राप्त होता, तो मनुष्यों का सौभाग्य-वाचन, नीरम एवं निरद्वेष  
 हो जाता। उम समय अदिमे अपिद उद्वेष, अद्वैती  
 स्त्री या अद्वैत पुरुष न काम भाग भोगता ही हाता आर इस उद्वेष  
 के माधय कारणों को ही, प्रोसाहन दिया जाता। अदिमा, सत्य,  
 प्रसन्न, आदि मिच्छान्त, इस उद्वेष न कारण माने जान, इमान्तर  
 इहे समूल नष्ट किया जाता, जिससे संसार में अरान्ति हा जाती  
 और हाहाकार मच जाता। तात्पर्य यह, कि यदि विवाह को फलत  
 विषय भोग के लिए ही माना जाये, तब भी नैतिक-सम्बन्ध की  
 प्रथा होने पर, सामारिक-जीवन शान्तिपुष्क न थीत सकता।



वास्तव में, विवाह दुर्विषय भोग के लिए नहीं है, किन्तु ब्रह्मचर्य पालन की कमजोरी को धीरे धीरे मिटाकर, ब्रह्मचर्य पालन

की पूर्ण क्षमता प्राप्त करने के लिए ही विवाह विषय भोग है। यदि प्रतिक्षण बढ़ने वाली दुर्विषय-भोग व द्विष नहीं है ;

की लालसा को, बिना विवाह किये ही-विवेक स-दधाने की शक्ति हो, तो विवाह करने की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती। हम शक्ति के अभाव में ही विवाह किया जाता है। जिस प्रकार यदि आग न लगने दी गई या लगन पर तत्क्षण बुझा भी गई, तब तो दूसरा उपाय नहीं किया जाता और तत्क्षण न बुझा सकने पर- बढ़ जाने पर—उसकी मीमा करके उसे बुझाने का प्रयत्न किया जाना है। इसके लिए, जिस मकान में आग लगी होती है, उस मकान से दूसरे मकानों का सम्बन्ध तोड़ दिया जाता है, ताकि उनमें वह फैल न सके और इस प्रकार उसे सीमित करके फिर बुझाने का प्रयत्न किया जाता है। वह आग, जो लगने के समय ही न बुझाई जा सकी थी, इस उपाय से बुझा दी जाती है, बढ़ने नहीं दी जाती। यदि पहले ही आग न लगने दी जाती या लगने के समय ही बुझा दी जाती तब तो इस सीमान्तर्गत घर की भी हानि न होती। लेकिन ऐसा न कर सकने पर, यदि आग को सीमित न कर दिया जाय, तो उसके द्वारा अनेक मकान भस्म हो जाते। ठीक यही दृष्टान्त विवाह के लिए भी है। यदि मनुष्य अपने में कामवासना की आग उत्पन्न ही न होने दे या उत्पन्न होने के समय ही उसे विवेक द्वारा बुझा सके, तब तो विवाह की आवश्यक

पता ही नहीं रहती। लेकिन न दया मकाने पर उस आग को विवाह द्वारा सीमित कर दिया जाता है और फिर उसे पुमाने की चेष्टा की जाती है। विवाह द्वारा कामेन्द्रा को सीमित कर देने से यह बढ़ने नहीं पाती और इस प्रकार मनुष्य असीम हानि से बच जाता है। यदि विषयेन्द्रा की आग उत्पन्न न होने देने या विवक द्वारा उसे दया करने का क्षमता न होने पर भी उत्पन्न विषयेन्द्रा की पूर्ति के लिए स्वच्छन्दता से काम लिया जावे तो यह बढ़ कर भयकर हानि पहुंचाने वाली हो जाती है। तात्पर्य यह कि विवाह दुर्विषयेन्द्रा को बढ़ाने के लिए नहीं है किन्तु घटाने के लिए ही है और स्वच्छन्दता से दुर्विषय भोग को इच्छा बढ़ती है, घटती नहीं। इसके सिवा विवाहित जीवन यिताने में दया, अनुकम्पा आदि उन सदगुणों का भी बहुत कुछ विकास हो सकता है, जिनका लाभ स्वच्छन्दता में नहीं हो सकता। सन्तान को पात्रों पामों की दया विवाहित जीवन में ही की जाती है। स्वच्छन्द-जीवन में तो उससे बचने सन्तान को नष्ट करने की ही इच्छा रहती है। इसलिए ब्रह्मचर्य न पान करने पर दुराचार-पूर्ण जीवन श्लाघ्य नहीं कहला सकता। इस विषय में गांधीजी लिखते हैं—'यद्यपि महाशय ब्यूरो अखण्ड ब्रह्मचर्य को ही सर्वोत्तम मानते हैं, लेकिन सब के लिये यह शक्य नहीं है, इसलिए जैसे लोग के लिए विवाह-बन्धन फेवल आवश्यक है नहीं बरन् कत्तव्य के बराबर है।' गांधीजी आगे लिखते हैं—'मनुष्य के सामाजिक जीवन का केन्द्र एक पत्नी व्रत तथा एक पतिव्रत ही है।' यह सभी हो सकता है, जब स्वच्छन्दता

गुण ममका जाव और उसे विवाह-बंधन द्वारा त्यागा जाव ।

जो लोग, पर-स्त्री पति और स्व-स्त्री-पति क विषय भोग म समान पार मानते हैं, वे भी गलत रास्ते पर हैं । स्व-स्त्री-पति और पर-स्त्री-पति के विषय भोग में, प्रत्येक दृष्टि से बहुत ही अंतर है, जिसका कुछ दिग्दर्शन ऊपर कराया भी गया है । इसलिए ब्रह्मचर्य क अंग में, अप्रिवाहित जीवन, सर्वथा निन्द्य है ।

विवाह, पुरुष और स्त्री के आजीवन साहचर्य का नाम है । यह साहचर्य, काम-वासना की दवा, और ब्रह्मचर्य क समोप पहुचान का साधन है । पारचात्य विद्वान् व्यूरे लिखता है, कि 'विवाह इसके भी, विषय त्रिलाममय अमयम, धार्मिक और नैतिक, दोनों दृष्टि से अक्षम्य अपराध है । अमयम म, वैवाहिक-जीवन का एक पहुचती है । सन्तानोत्पत्ति क सिवा और सभी प्रकार की काम-वासना-वृत्ति, दाम्पत्य प्रेम के लिए पापक और ममान तथा व्यक्ति के लिए हानिकारक है' इस कथन द्वारा व्यूरा ने, जैन शास्त्रों क कथन को पुष्ट किया है । नैन शास्त्र, तो इमक आद्यप्रेरक ही हैं । गांधाजी भी लिखते हैं—'विवाह बन्धन की पवित्रता को प्रायम ररतने के लिए भोग नहीं, किन्तु आम-मयम ही जीवन का धम समका जाना चाहिये । विवाह का स्वेच, दम्पति के हृदयों क विकारों को दूर करके, उन्हें ईश्वर क निकट ल जाना है ।'

विवाह रूपी आजीवन साहचर्य, ज्ये स्त्री-पुरुष का हीवा है जो स्वभाव, गुण, आयु, बल, वैभव, कुल और सौन्दर्य अर्थात्



विवाह विषयक  
अधिकार

दृष्टि में रखकर, एक दूसरे को पसन्द करे। स्त्री-पुरुष में से, किसी एक की ही पसन्दगी पर विवाह नहीं होता है, किन्तु दोनों की पसन्दगी से किया हुआ विवाह ही, विवाह के अर्थ में माना जा सकता है। किसी एक की इच्छा और दूसरे की अनिच्छा पर होने वाला विवाह, विवाह नहीं है। विवाह-अधन, स्त्री और पुरुष दोनों की स्वेच्छा पर ही निर्भर है।

विवाह सम्बन्ध स्थापित करने में, पुरुष, और स्त्री के अधिकार समान ही हैं। अर्थात्, जिस प्रकार पुरुष, स्त्री को पसन्द करना चाहता है, उसी प्रकार, स्त्री भी पुरुष को पसन्द करने की अधिकारिणी है। बल्कि, इस विषय में, स्त्रियों के अधिकार, पुरुषों से भी अधिक हैं। स्त्रिये अपने लिए वर पसन्द करने को स्वयम्बर करती थी, ऐसे प्रमाण तो चैन शास्त्र और अन्य ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर मिलते हैं, लेकिन पुरुषों ने अपने लिए स्त्री पसन्द करने को, स्वयम्बर की ही तरह का कोई स्त्री सम्मेलन किया हो, ऐसे प्रमाण कहीं नहीं मिलता। इस प्रकार, पूर्वकाल में स्त्री की पसन्दगी को विशेषता दी जाती थी। फिर भी यह बात नहीं थी, कि जिस पुरुष को स्त्री पसन्द करे, पुरुष के लिए उसके साथ विवाह करना आवश्यक हो। स्त्री के पसन्द करने पर भी, यदि पुरुष की इच्छा उसके साथ विवाह करने की नहीं है, तो विवाह करने से इन्कार कर देना, कोई नैतिक या सामाजिक अपराध नहीं माना जाता था।



जिस विवाह में, घर ने कन्या को और कन्या ने घर को पसन्द कर लिया हो, एक दूसरे पर मुग्ध हो गये हों, किन्तु माता पिता आदि अभिभावक की स्वीकृति के बिना ही, एक न दूसरे का स्वीकार कर लिया हो एव जिसमें देश-प्रचलित विवाह विधि पूरी न की गई हो, उसे गान्धर्व विवाह कहते हैं। यह विवाह, दम्पति की अपेक्षा मध्यम और राजस विवाह की अपेक्षा अन्ध माना जाता है।

राजस विवाह उस कहते हैं जिसमें घर और कन्या, एक दूसरे को समान रूप से न चाहते हों, किन्तु एक ही व्यक्ति दूसरे को चाहता हो, जिसमें समानता का ध्यान न रखा गया हो, जो किसी एक की इच्छा और दूसरे की अनिच्छापूर्वक जबरदस्ती या अभिभावक की स्वार्थ-लोलुपता से हुआ हो और जिसमें देश-प्रचलित उत्तम विवाह विधि को ठुकराया गया हो तथा वैवाहिक नियम भंग किये गये हों। यह विवाह, उक्त दोनों विवाहों से निकृष्ट माना जाता है।

पहले बताया जा चुका है, कि कम से कम आयु का चौथा भाग, यानी २५ और १६ वर्ष, की अवस्था तक तो पुरुष स्त्री को अस्पृष्ट ब्रह्मचर्य का पालन करना ही चाहिये। इसके अनुसार विवाह की अवस्था, २५ वर्ष और १६ वर्ष से कम नहीं ठहरती है। किसी भी ग्रन्थ में, विवाह वय और सहवासवय का अलग उल्लेख नहीं

विवाह योग्य

अवस्था

पारा जाता, किन्तु विवाह और सहवास के एक ही साथ होने का प्रनाश मिलता है। अर्थात् वही विवाह स्वयं और वही सहवास-वयं।  
 वैदिक-ग्रन्थ कहते हैं—

पचविंशे दत्तो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे ।

समस्त्राऽगतवीर्या तौ जानीयात् कुशलोभिपक्व ॥

‘वीर्य और रज की अपेक्षा से, १२ वर्ष का पुरुष और १६ वर्ष की स्त्री, परस्पर समान हैं, इन बात को कुशल वेष ही जानत है।’

इसके अनुसार विवाह की अवस्था, पुरुष की २५ वर्ष और स्त्री की १६ वर्ष ठहरनी है। इस अवस्था में स्त्री और पुरुष, इस बात के निर्णय पर भी पहुँच सकते हैं कि हम पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर सकते हैं या नहीं? अर्थात् विवाह की आवश्यकता का अनुभव, इस अवस्था या इसमें अधिक अवस्था में ही हो सकता है और जब तक आवश्यकता न जान पड़े, तब तक विवाह करना धार्मिक और नैतिक दोनों ही दृष्टि से अपराध है। जैन शास्त्र पूर्ण ब्रह्मचर्य के प्रतिपादक हैं, इसलिए उनमें विवाह विषयक विधि-विधान नहीं पाया जाता, लेकिन जैनशास्त्रों में उल्लिखित कथाओं से विवाह के विषय पर बहुत प्रकाश पड़ता है। जैनशास्त्रों में उल्लिखित कथाओं से प्रकट है कि स्त्री पुरुष का विवाह तभी हो सकता है जब वे विद्या, कला आदि सीख चुके हों और उनके शरीर पर कामवासना का प्रभाव पड़न लगा हो। औपपातिक सूत्र में कहा है —

नवग मुक्त पद्मिबोधिष् अठारस्स त्सेसी भासा विसारए  
गीयरती गधवणणट कुसले ह्यजोही गयजोही रहजाही बाहु,  
जोही बाहुपमही विपानचारी साहस्सीए अलभाग समत्येया  
विभवई ।

‘जिनके नव अंग ( २ कान २ श्रोत्र २ नाक १ जीभ १ त्वचा और  
१ मन काम भोग के लिये ) जागृत हुए हैं अपने अपने विषय को प्रदर्श  
करने की इच्छा उत्पन्न होगई है, जो अगारइ दश लो भाया का विचारइ  
है, गाने में, शक्ति प्रीडा में, गन्धर्व वजा में और नात्यकछा में कुशक ह,  
अश्वयुद्ध, गजयुद्ध रणयुद्ध बाहुयुद्ध साहसी एव निपुण और काम भोग  
भोगने में समर्थ होगया है ( उभका विवाह हुआ । )’

इम पाठ से पुरुष की विवाह योग्य अवस्था पर बहुत  
अधिक प्रकाश पड़ता है। भगवती सूत्र म भी विवाह का वर्णन  
करते हुये पति पत्नी की समानता किन बातों में देखी जाती थी, यह  
बताया गया है। उसमें कहा है —

सरिसयाण सरिश्चयाण सरिध्वयाण सरिस लावन्न रूप  
जाव्वण गुणोवत्रयाण सरिसयाण कुन्नाहितो आणिल्लियाण

‘समान योग्यता वाली समान त्वचा वाली समान आयु वाली  
समान लावण्य रूप शीघ्र और गुणवाली समान कुल की ( कन्या के  
साथ विवाह हुआ । )’

इससे अनुसार, विवाह समान युवावस्था में ही हो सकता  
है। यद्यपि उक्त प्रमाण में समान आयु भी बतलाई गई है, लेकिन

उसके साथ ही, समान यौवन भी कहा गया है और ऊपर वैद्यक ग्रन्थ का हवाला देकर, यह भी बताया जा चुका है कि २५ वर्ष का अवस्था का पुरुष तथा १६ वर्ष की अवस्था की स्त्री, समान हैं। स्थानांग सूत्र की टीका में भी कहा गया है —

पूर्णपोडशवर्षा स्त्री पूर्णविशेन मृगता ।  
 शुद्धे गर्भाशये मार्गे रक्ते शुक्लेऽनिल हृदि ॥  
 बीर्यवन्त सुा सूते ततो न्यूनान्दयो पुन ।  
 रोग्यल्पायुरधन्या वा गर्भो भवति नैव वा ॥

२ वाँ स्थान, २ ग उद्देश ।

'जिसकी अवस्था १६ वर्ष की हो चुकी है, ऐसी स्त्री, जिसकी अवस्था २० वर्ष की हो चुकी है, ऐसे पुरुष से मिलने पर और रक्त, धीरे धीरे वायु, गर्भाशय मार्ग तथा हृदय शुद्ध होने पर, धीरे धीरे पुत्र उत्पन्न करती है। इससे कम अवस्था वाली स्त्री यदि कम अवस्था वाले पुरुष से सगम करे तो रोगी अल्पायुषी तथा आदसी सन्तान उत्पन्न करती है, या गर्भाधान ही नहीं होता।

यद्यपि यह कहने वाले टीकाकार ने, पुरुष की अवस्था २० वर्ष की ही बताया है, लेकिन स्त्री की अवस्था तो १६ वर्ष ही कहा है। अर्थात् जितने भी प्रमाण दिये गये हैं, उन सबसे स्त्री की विवाह योग्य अवस्था १६ वर्ष से अधिक ही ठहरती है, कम नहीं। इस प्रकार पुरुष का विवाह २० या २५ वर्ष और स्त्री का विवाह १६ वर्ष की या इससे अधिक अवस्था में ही हो सकता है, कम अवस्था में

नहीं। कम अवस्था में विवाह होने पर क्या हानि होती है, यह बात आगे बताई गई है।

प्रकृति पर दृष्टिपात करने से, यह बात स्पष्ट है कि एक पुरुष, एक ही स्त्री के साथ और एक स्त्री, एक ही पुरुष के साथ विवाह कर सकती है, अधिक के साथ नहीं। यद्यपि, जैन शास्त्रों में और अन्य ग्रन्थों में, अधिक विवाह की बातें बहुत मिलती हैं, लेकिन अधिक स्त्रियों के साथ विवाह करना, उस समय की संस्कृति थी और उस समय के पुरुष, अधिक स्त्रियों का होना, एक विशेषता और मौमाम्य की बात मानते थे। उस समय की स्त्रियाँ भी, निरोपत ऐसे ही पुरुष को पसन्द करती थीं, जो वैभवशाली, यशस्वी, धीर और सुन्दर हों। ऐसे पुरुष के, कितनी ही स्त्रियाँ क्या न हों, उस समय की स्त्रियाँ, इस बात की अपेक्षा नहीं करती थीं। उस समय की संस्कृति शुद्ध भी रही हो और अधिक स्त्रियों के साथ विवाह करने का कुछ भी कारण क्यों न रहा हो, लेकिन आनकल ऐसा करना, उचित नहीं कहला सकता। किसी भी व्यक्ति को, आजकल यह अधिकार नहीं है, कि किसी भी वस्तु का उपभोग, परिमाण से अधिक करे। इसके अनुसार, किसी पुरुष को अधिक स्त्रियों से और किसी स्त्री को, अधिक पुरुषों से विवाह करना गिन नहीं है।

वैशक ग्रन्थों पर दृष्टि देन से भी, यही ज्ञात होता है, कि एक पुरुष को काम वासना दृप्त करने के लिये एक स्त्री और एक

स्त्री की काम-वासना तृप्त करने के लिये एक पुरुष पर्याप्त है। न एक पुरुष अधिक स्त्रियों की काम-वासना शान्त कर सकता है, न एक स्त्री अधिक पुरुषों की। इसके अनुसार भी, एक पुरुष का अधिक स्त्रियों से और एक स्त्री का अधिक पुरुषों से विवाह होना अनुचित है।

विवाहित-जीवन, सुरक्षपूर्वक निभाने की जिम्मेदारी, स्त्री और पुरुष दोनों पर समान रूप से है। हों, इसके लिए एक दूसरे का

पति-पत्नी पर

उत्तरदायित्व।

सहायक अथवा है। फिर भी किसी ऐसे कार्य में जिसका दुष्प्रभाव अपने आप पर ही नहीं, किन्तु भावी सन्तान या दूसरे लोगों पर भी

पड़ता है, उसमें सहायता करना, नैतिक, सामाजिक और धार्मिक, दोनों ही दृष्टि में अपराध है। उदाहरण के लिए, सन्तान के बालक होने (पर्याप्त आयु की न होने) पर भी, पुरुष का स्त्री को और स्त्री का पुत्र को प्रसन्न करने के लिए—सस्त्री इच्छा पूरी करने के लिए—सैथुन में प्रवृत्त होना। ऐसा करने से, एक छोट बालक की माता गर्भवती हो सकती है, जिससे एक छोटे बालक का विकास नारा जाता है, उसे गेग घेर लेते हैं और गभ का बालक भी पुत्र नहीं होता, किन्तु क्षीण दशा में पहुँचता जाता। इस प्रकार दोनों ही बालकों का जीवन, कष्टमय हो जाता है, इसलिए ऐसे कार्यों में दम्पति का एक दूसरे की सहायता करना भी अपराध ही है।





## आधुनिक-विवाह ।

विवाह क्या, किम अवस्था में और किन नियमों के होता है, यह थोड़े में बताया जा चुका है। अब यह देखना है आच-कल की विवाह प्रथा क्या है, विवाह के नियमादि का किम प्रकार किया जाता है और यदि उन नियमों की अवहेलन जाती है तो क्या हानि होती है ? यह देखने के लिये इस प्रकरण में बाल विवाह और ब्रेनोड़ विवाह, इन दो भागों में विभक्त प्रमश दोनों पर विचार किया जाता है ।

### बाल विवाह ।



पूर्व प्रकरण में यह बताया जा चुका है कि पुरुष और स्त्री, विवाह योग्य कम से कम अवस्था २० या २५ और १६ है। इसके साथ ही यह भी बताया गया है कि पुरुष और स्त्री योग्य हों, तब विवाह होता है। आधुनिक समय के विवाह पूर्व-वर्णित विवाह नियमों की अवहेलना की जाती है। पुरुष-स्त्री, विवाह-बंधन में सभी बंध सकते हैं, जब वे आ

ब्रह्मचर्य पालने की अपनी अगत्तना का अनुभव कर लें, लेकिन धान के विवाहों में ऐसे अनुभव के लिए समय ही नहीं आने दिया जाता। जैन-समाज में ही नहीं, किन्तु भारत के अधिकांश लोगों में पुरुष स्त्री, युवक-युवती होने से पहले, बालक-बालिका का ही विवाह किया जाता है। अधिकांश बालक बालिका के माता पिता अपने बच्चों का विवाह ऐसी अवस्था में कर देते हैं, जब कि वे बच्चे विवाह की आवश्यकता, उनकी जवाबदारी और उसका भार समझने के लिये अयोग्य ही नहीं, किन्तु हम ओर से ही अनभिज्ञ होते हैं। यद्यपि बालक-बालिकाओं की यह अवस्था, खेलने-कूदने योग्य है, लेकिन उनके माता पिता, उन बच्चों के अन्य अन्य खेल-कूद देखने के साथ ही साथ, विवाह का खेल देखने की भी लालसा से, अपने दुधमुँहे बच्चों के जीवन का सर्वनाश कर देते हैं।

अन्तर्गत भारत में, ऐसे ऐसे बालक-बालिकाओं के विवाह सुने जाते हैं, जिनकी अवस्था एक वर्ष से भी कम की होती है। अपने बालक या बालिका को दूध दे या दुल्हिन के रूप में देखने के लाला यित माँ बाप, अपनी जवाबदारी और सन्तान की भावी उन्नति सब को, बाल-विवाह की अग्नि में भस्म कर देते हैं। अपने क्षणिक सुख के लिए अपने अधीन बालकों को, भोग की धक्कती हुई ज्वाला में, भस्म होने के लिए छोड़ देते हैं और अपनी सन्तान को उम्र में जन्तरे देख कर भी, आप खड़े-खड़े हँसते तथा यह अवसर देखने को मिला, इसके लिए अपना अहोभाग्य मानते हैं।

आज के अधिकांश लोगों को, यह भी पता नहीं है कि हमारा विवाह कब, किस प्रकार और किस विधि से हुआ था, तथा विवाह के समय, हम कौन-कौनसी प्रतिज्ञायें कग्नी पड़ी थीं। उन पता भी कहाँ से हो ? वे जानें भी तो कैसे ? उनका विवाह तो तब हुआ होगा, जब वे, माँ की गोद में बैठकर दूध पिया करते होंगे नगे शरीर, बच्चा के साथ खेला करते होंगे और विवाह तथा वध किस जानवर का नाम है, अपनी बुद्धि से यह भी न जानते होंगे उन्हें, घोड़े पर और मण्डप के नीचे उसी प्रकार बैठा दिया गया होगा, जिस प्रकार मन्दिरों में मूर्तियाँ बैठा दी जाती हैं। जहाँ ब्राह्मण लोग, पति-पत्नी व परम्पर के वचना का पाठ कर रहे होंगे तब वे, नाइ और नाइन की गोदी में सो रहे होंगे। जब उन्हें भोजन दिलाई जाती होगी—यानी फेरे दिये जाते होंगे—तब वे, अपने पैरों से नहीं, किन्तु नाइ या नाइन के पैरा से चलते रहे होंगे। ऐसी दृश्य में, व, विवाह की बातें जानें और बतायें, तो कहाँ से ?

एक सचन कहते थे, कि मुझे एक विवाह में सम्मिलित होने का मौक़ा मिला। उस विवाह में, पति और पत्नी, दोनों अल्पवयस्क थे। रात के समय जब कि विवाह होता था—कन्या मण्डप में ही सो गई। लग्न के समय, कन्या की माँ ने कन्या को जगात हुए कहा कि बेटा ! उठ, तेरे लग्न करें। लड़की की अवस्था ऐसी थी, कि वह 'लग्न' शब्द को ही न जानती थी। माँ के जगाते पर, लड़की ने माँ से कहा कि— मुझे तो नींद आती है, तू अपने

सम्र करले। यह कहकर लड़की फिर सो गई और चन्द में उसका विवाह, निद्रावस्था में ही हुआ।

विचारने की बात है, कि जो बालक-बालिका लग्न या विवाह का नाम भी नहीं जानते, उनका विवाह कब होने पर, ये विवाह सम्बन्धी नियमों का पालन, किम प्रकृत कर्तव्ये? उन्हें जब अपने विवाह का ही पता नहीं है, तब बलिह विरमक प्रति हाथों को क्या जान और उनका पालन कैसे करे? नयी बात तो यह है, कि इस प्रकार की अयोध अग्रस्था में होने वाला विवाह को 'विवाह' कहना ही अ-याय है।

जमाई या बहू के शौकीन मॉन्टार और नानवाल के चट्टू धाराती, बालक और बालिका रूपी झुण्ड-बुड़ों को सासारिक जीवन की गाड़ी में जोत कर झण्ड उस गाड़ी पर सवार हो जाते हैं। अर्थात्, सनरुद जीवन का बोझ, उन पर बलात् डाल देते हैं। अण्डस-भावना के वश होकर ये लोग नीति की (बाल विवाह-विगत) शर्तों का उपेक्षा की दृष्टि से न्यस्तते हैं, उनका उपहास करते हैं और उन्हें पददलित कर डालते हैं। यद्यपि, वे यह सय कुद करत हैं इज्जत ममभकर, हर्ष तथा प्रसन्नता क लिए और अपनी सन्तान से हुसी बनाने के लिए लेकिन वास्तव में, ऐसे लोग, जिस बालक-बालिका को अरुणा समझते हैं, वह कभी-कभी बहुत ही बुग, विद्वेष का कारण समझते हैं वही शोक का कारण और जिस सन्तान को सुखी बनाने का कारण

मानते हैं, वही सन्तान को दुःखी बनाने का उपाय भी हो जाता है। कुछ लोग, इस बात की समझते भी हूँ, लेकिन सामाजिक नियमों से विवश होकर या देखा-देखी, बाल विवाह के घोर पातकमय कार्य में प्रवृत्त होते हैं और सामाजिक नियम तथा अनुकरण करनेवाले स्वभाव के लड़के, बुद्धि को—विवाह करने तक के वास्ते—दूर रखते हैं।

नाती-पोते द्वारा अपने जीवन को सुखी मानने वाले लोग, अपना सन्तान का बाल्यावस्था में विवाह करके ही सन्तोष नहीं करते, किन्तु विवाह के समय में ही—या कुछ ही दिन पश्चात् अथवा पति पत्नी को, उनका उज्ज्वल और सुखमय भविष्य, काला और दुःखमय बनाने के लिए, एक कोठरी में बन्द भी कर देते हैं। उन बालक-बालिका में, प्रारम्भ से ही ऐसे संस्कार डाले जाते हैं; जिनके कारण, वे अयोग्य अवस्था में ही मैथुन से स्नेह करने लगते हैं। इस प्रकार के संस्कारों में, यदि कुछ कमी रह जाती है, तो उमकी पूर्ति, विवाह समय के गीता से पूरी हो जाती है और वे बालक-बालिका अपने माता पिता को पोते पोती विषयक लालसा पूरी करने के लिए, दुर्निपय भाग के अध्याह्न मागर में—अशक्त होते हुए भी—कूद पड़ते हैं।

कुछ लोगों ने, बालविवाह की पुष्टि के लिए, धर्म की भी ओट ले रखी है और बाल विवाह न करना, धार्मिक दृष्टि से अपराध बतलाया जाता है। लेकिन जो लोग, बाल विवाह को धार्मिक रूप

धार्मिक दृष्टि से  
बाल विवाह।

दत्त हैं, उन्हीं के ग्रन्थों में लिखा है—

‘अज्ञानं पतिं मर्यादामज्ञातपतिं सेवनाम् ।  
नो द्राह्योत्पिता बाला, म ज्ञातां धर्मं शासनाम् ॥  
हेमाद्रिः ।

‘पिता ऐसी कम अवस्था वाली कन्या का विवाह कदापि न करे जो पति की मर्यादा, पति की सेवा और धर्म शासन को न जानती हो ।’

हमके सिवा आवश्यक ब्रह्मचर्य के विषय में, मनुस्मृति का जो प्रमाण दिया गया है, उससे भी बाल विवाह का निषेध ही होता है। बल विवाह न करने को धार्मिक अपराध बताने वाला लग, ‘अष्ट वर्षा भवेद् गौरी’ आदि का जो एक पाठ प्रमाण रूप बताते हैं, मनुस्मृति और हेमाद्रि के उक्त प्रमाणों से, बाल विवाह का विधान करने वाला यह पाठ, प्रक्षिप्त ठहरता है। जान पड़ता है कि यह पाठ उम समय बनाया गया है जत्र भारत में मुसलमानों का जोर था और वे लोग स्त्रियों और विशेषतः अविवाहित युवतियों का बलानु अपहरण करते थे। मुसलमानों से स्त्रियों का रक्षा करने के लिये ही, सम्भवतः यह पाठ बनाया गया था, क्योंकि मुसलमानों का जोर था और वे लोग स्त्रियों और विशेषतः अविवाहित युवतियों का बलानु अपहरण करते थे। इसलिये विवाह हो जाने पर स्त्रियों इस भय से बहुत कुछ मुक्त समझी जाती थीं।

यद्यपि, मुसलमानी काल में बाल विवाह की प्रथा प्रचलित अवश्य होगई थी, लकिन आजकल की भाँति, अल्पवयस्क पति पत्नी को विवाह-समय में ही सहवास नहीं कराया जाता था।

सहवास का समय विवाह समय से भिन्न होता था। आज मुमल मानी काल की मो स्थिति न होने पर भी, बाल विवाह प्रचलित है और सहवास की भी कोई निश्चिन् अवस्था नहीं है।

सादर्य्य य\* है, कि बाल विवाह किसी भी धर्म के शास्त्रों में, उचित या आवश्यक नहीं बताया गया है, किन्तु ऐसे विवाहों का निषेध ही किया गया है।

बाल विवाह द्वारा, प्राचीन विवाह नियम भंग करने वालों को प्रकृति-दत्त दण्ड भी भोगना पड़ता है। प्रकृति अपने नियम भंग करने वाले के साथ, किंचित भी नमी का व्यवहार नहीं करता, बाल विवाह से हानि। किन्तु दण्ड देती ही है। अतः अब यह देखते हैं कि बाल विवाह के कारण प्रकृति द्वारा कौनसा दण्ड मिलना है यानी बाल विवाह से क्या २ हानि होती है।

युवावस्था में पूर्ण, स्त्री पुंस्व का रज-वीर्य अपरिपक्व रहता है। बाल विवाह और समय से पूर्ण के दाम्पत्य सहवाम से अपरिपक्व रज-वीर्य नष्ट होता है। अपरिपक्व रज-वीर्य नष्ट होने से शरीर की रस से लेकर मज्जा तक सभी धातुयें शिथिल हो जाती हैं, जिससे शारीरिक विकास रुक जाता है। मौन्दर्य, उत्साह, प्रसन्नता और अगा की शक्ति घट जाती है। आयुर्बल भी कम हो जाता है। गोग शोक घेरे रहते हैं। असमय में ही दाँत गिर जाते हैं, बाल पकने लगते हैं तथा आँखों की ज्योति क्षीण हो जाती है।

यही दिनों में, पुरुष नर्पसक और स्त्री स्त्रीत्व रहित हो जाती है।  
 व प्रकार पति पत्नी का जीवन, दुःखमय हो जाता है।

रही सन्तानोत्पत्ति का घात। इस विषय में वैद्यक ग्रन्थ कहते हैं—

अन षोडश वर्षाधाम् अमास एचत्रिंशतिम् ।

यथा घटा पृमान् गर्भं कुभिस्य स विपद्यते ॥

जात वा न चिरञ्चावेत्तनीयेद्वा दुर्वलेन्द्रिय ।

तस्मादत्यन्त बालाया गर्भाधान न कारयेत् ॥

सुश्रुत

यदि सोलह वर्ष से कम आयुवा वाली स्त्री में २५ वर्ष से कम आयुवा वाला पुत्र्य गर्भाधान करे तो वह गर्भ उत्पत्ति में ही विपत्ति का प्रस होना है। यदि उम गर्भ से सन्तान उत्पन्न भी हुई तो जीवित नहीं रहती है और यदि जीवित भी रही तो अत्यन्त दुबल अंग वाली होती है इसलिये कम आयु वाली स्त्री में कमी गर्भाधान न करना चाहिए।

इस प्रकार, सन्तानोत्पत्ति का निष्पत्ति भी बाल विवाह घातक ही है। इंग्लैंड में, मनुष्या की औसत आयु ५९ वर्ष और बाल मरण प्रतिमहत्त्व ७५ है, लेकिन भारत के मनुष्यों की औसत आयु केवल २३ वर्ष और बाल-मरण प्रतिमहत्त्व १४ है। इस महान् अन्तर का कारण यही है कि इंग्लैंड में बाल विवाह की घानक प्रथा नहीं है। लेकिन भारत में इस प्रथा ने, अविनाश लोगों के हृदय में अपना घर बना लिया है। पौराणिक के इच्छुक लोग, अपने बालक-बालिका का विवाह करते तो हैं—पोते पोती के सुख की



अभिलाषा से, लेकिन अममय में उत्पन्न सन्तान मृत्यु के मुख में जाकर, ऐमे लोगों को और खिलाप करने के लिये छोड़ जाती है, अपने माता पिता को अशक्त बना जाती है तथा इस प्रकार से वह अपने दुष्कृत्यों का दण्ड दे जाती है। इंग्लैंड की अपेक्षा, भारत के लोगों की औसत आयु कम होने के कारण, बाल विवाह द्वारा होने वाले रोग और असमय के वीर्य पात से होने वाली कमनोरी है। इसी घातक प्रथा के कारण अनेक स्त्रियाँ प्रसवकाल में ही परलोक को प्रस्थान कर जाती हैं, या मज्ञा के लिए रोग ग्रस्त हो जाती हैं और फिर रोगी सन्तान उत्पन्न करके भावी सन्तति के लिए कोंटे बिटा जाती हैं।

बाल विवाह के विषय में गाधीजी लिखते हैं, कि 'हिन्दुस्तान को छोड़कर और किसी भी देश में, बचपन से ही विवाह की बातें, बालों को नहीं सुनाई जातीं। यहाँ तो, माता पिता की एक ही अभिलाषा रहती है कि लड़के का विवाह कर देना। इससे, असमय में ही बुद्धि और शरीर का हास होता है। हम लोगों का जन्म भी प्रायः बचपन के व्याह माता पिता से हुआ है। हमें ऐसा लोकमत बनाने की जरूरत है, कि जिसमें बाल विवाह असम्भव हो जावे। हमारी अस्थिरता, कठिन और अविरल श्रम से अनिच्छा, शारीरिक अयोग्यता, शान से शुरू किये गये हमारे कामों का बैठ जाना और मौलिकता का अभाव इत्यादि, इन सब के मूल में, मुख्यतः हमारा अत्यधिक वीर्यनाश ही है।'

गाथीनी, आगे लिखते हैं कि—'जो माँ-बाप, अपने बच्चों को नागाई बचपन में ही कर देते हैं, वे उन बच्चों को बेचकर घातक बनते हैं। अपने बच्चों का लाभ देखने के बदले, वे अपना ही अर्थ खो देते हैं।' तो, आप उड़ा बतना है अपनी जाति त्रिगदरी में नाम कमाना है, लड़ने का याद करके तमाशा देना है। लड़कें अहित दोगें, तो उसका पढना लिखना दोगें, उमर का जतन करे, अपना शरीर बनायें। घर गृहस्थी की खटखट में डाल देने में यह हट, उमर का दूसरा कौनसा बड़ा अहित हो सकता है ?'

यदि यह कहा जाये, कि धार्मिकता की दृष्टि में विवाह तो बचपन में कर दिया जाता है, लेकिन सहवास नहीं होता है तो कहते तो यह बचपन, सर्वथा नष्ट तो बहुत अंश में गलत है। क्योंकि, प्रायः विवाह समय में ही सहवास होना सुना जाता है। कदाचित् उस समय सहवास न होता हो, तो फिर बचपन में बियाह किस दृष्टि से किया जाता है ? ऐसे विवाह का विधान तो, किसी भी धर्म के शास्त्र नहीं करते और ऐसे विवाह प्रत्यक्ष ही हानिप्रद हैं। बचपन में ब्याह गये पति पत्नी की अवस्था में, विरोध अन्तर नहीं होता। जिस समय, कन्या युवती मानी जाती है, उस समय उसका पति, युवावस्था में पदार्पण भी नहीं कर पाता। वह युवती है, इस लोभ लालच के भय से, माता पिता की दृष्टि में, अपने अल्पवयस्क पुत्र के लिए स्त्री-सहवास आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार, उस हानि से बचा नहीं जा सकता, जो बाल विवाह से होती है। इसके

वचपन में विवाह गये पति-पत्नी, आगे चलकर कैसे-कैसे स्वभाव  
 क होंगे, उनके रूप, गुण, शारीरिक विकास, शक्ति आदि में कैसी  
 विषमता होगा इस कोई नहीं जान सकता। पति-पत्नी में विषमता  
 होने से, उनका जीवन भी क्लेशमय ही बीतता है।

वचपन में विवाह होने में, विवाहार्थी की भी मंथना बढ़ती  
 जाती है। समान में एक-एक, दो-दो और चार-चार वर्ष की अवस्था  
 वाली बाल विवाह दिग्गद गंगा, बाल विवाह का ही कटुफल है।  
 पैरु आदि बीमारी में, बालक पति की ता मृत्यु हो जाती है और  
 बालिका पत्नी, वैवर्ष्य भोगन क लिए रह जाता है। जिस पति में,  
 कम अवयव बालिका ने काइ सुख नहीं पाया है, तद्वय में जिसकी  
 मृति का कोई साधन नहीं है जिसके नाम पर वैवर्ष्य भोगन क  
 कोई कारण नहीं है, कम पति के नाम पर, एक बालिका से वैवर्ष्य  
 पालन करान का कारण, बालविवाह ही है। एसी बाल विवाह  
 अपना वैवर्ष्यावस्था किम महार से व्यनीत कर सकती, यह देखने  
 की कोई आवश्यकता भी नहीं समझता।

नात्पर्य यह, कि महारास न होने पर भी, बालविवाह हानि  
 प्रद ही है। विवाह हो जाने पर, बालक पति-पत्नी, ज्ञान और विद्य  
 से भी बहुत कुछ पिछड़ रह जात हैं, तथा एक दूसरे के स्मरण से  
 वीर्य में दोष पैदा हो जाता है। इसलिए बाल विवाह त्याग्य है।

## बेजोड़ विवाह ।

बेजोड़ विवाह भी, पूर्ण की विवाह प्रथा और आज की विवाह प्रथा मित्रता बनाता है । यद्यपि विवाह में, वर और कन्या के पूर्व-वर्णित समानता रेखना आवश्यक है, लेकिन आज के विवाह विधानों में, हम बात का ध्यान बहुत कम रखा जाता है । आज के बेजोड़ विवाहों को देखकर, यदि यह कहा जावे, कि वर और कन्या के साथ नहीं, किन्तु धन-वैभव या कुल के साथ विवाह होता है, तो कोई अत्युक्ति न होगी । यद्यपि संसार के प्रत्येक प्राणी, अपनी समानता वाले को ही अधिक पसन्द करते हैं और विवाह के लिये तो यह बात विशेष ध्यान में रखने योग्य है, लेकिन आजकल के बहुत से विवाह, डेंट और बैल की जाड़ा—स होते हैं । ऐसे विवाह, विशेषतः धन या कुल के कारण ही होते हैं अर्थात् या तो धन के लोभ से बेजोड़ विवाह किया जाता है या कुल के लोभ से । बेजोड़ विवाह में, धन का लोभ दो प्रकार का होता है । एक तो यह कि लड़के या लड़की की सम्पूर्ण धनवान होगा, इसलिए बड़ा प्रस्ताव वाली कन्या के साथ छोटी अवस्था वाले पुरुष का, या छोटी अवस्था वाली कन्या के साथ बड़ी अवस्था वाले पुरुष का विवाह कर दिया जाता है । दूसरे कन्या या वर के बदले में द्रव्य प्राप्त होगा, इसलिए भी ऐसे विवाह कर दिये जाते हैं । इसी प्रकार, कुल के लिए भी बेजोड़ विवाह किये जाते हैं, अर्थात् हमारी लड़की

या हमारे लड़के की समुराल इस प्रकार की धरानेदार या कुलबान होगी, इसलिए भी रेजोड़ विवाह किये जाते हैं ।

कई माता पिता, लोभ के बराबर होकर, अपनी सन्तान को हिताहित नहीं देखते और उसका विवाह, ऐसे घर या ऐसी कन्या के साथ कर देते हैं, जो बेजोड़ और एक दूसरे की अभिरुचि प्रतिकूल होते हैं । यह माता पिता, अपनी अशोभ कन्या को, दूसरे घर के गले मड़ देते हैं । विशेषतः व धन के लिए ही ऐसा करते यानी कन्या के बदले में द्रव्य लेने के लिए । द्रव्य-लालसा के अन्तर्गत वे इस बात को विचारने की भी आवश्यकता नहीं समझते, इन दोनों में परस्पर मेल रहेगा या नहीं तथा हमारी कन्या, विद्वान् सिन मुहागिन रह सकेगी ! उन्हें तो केवल द्रव्य से काम रहता उनकी तरफ से कन्या भी चाहे वैसा ही दुःशा क्यों न हो ।

विवाह और पत्नी के इच्छुक वृद्ध भी यह नहीं देखते, मैं इस तरुणी के योग्य हूँ या नहीं और यह तरुणी, मुझे पसन्द करेगी या नहीं ! विद्वानों का कथन है—

वृद्धस्य तरुणी विपम् ।

—सूत्रि ।

वृद्ध को, तरुणी विप के समान बुती लगती है ।'

इसका उल्टा यह होगा, कि तरुणी को वृद्ध, विप के समान बुरा लगता है । जब पति-पत्नी एक दूसरे को विप के समान समझते हों, तब उनका जीवन सुखमय कैसे धीत सकता है ?

प्रकार पर, न तो धन-लौभी माता पिता ही विचार करते हैं, न पति-पत्नी वृद्ध और न भाजन लौभी धरती या पड़ती। केवल धन के लालच, एक वृद्ध पत्नी तरुणी पर अधिकार कर लेता है, जिसका अर्थ है एक युवक हो सकता था और इसी प्रकार माता पिता को धन-लालच से, एक तरुणी को अपना बहू जीवन वृद्ध के लालच कर देना पड़ता है, जिस जीवन को यह किसी युवक के साथ बिना का अभिलाषा रहती थी। वृद्ध विवाह के विषय में कहना है कि यह एक कहानी इस स्थान के लिए उपयुक्त होने से जाती है।

एक वृद्ध अमीर की स्त्री का देहान्त हो गया। अमीर के दो नौकर अमीर से दूसरा विवाह करने के लिए कहा। अमीर ने उत्तर दिया, कि मैं किसी बुढ़ी स्त्री के साथ विवाह नहीं कर सकता, मुझे बुढ़ी स्त्री पसन्द नहीं। दोस्तों ने उत्तर दिया, कि आपका बुढ़ी स्त्री के साथ विवाह करने के लिए मौन कहता है। आप तरुणी के विवाह कीजिये। हम, आपके लिए तरुणा की तलाश कर दोस्तों की बात सुनकर, वृद्ध अमीर ने कहा कि—यह आपकी महारथाना है, लेकिन मैं पूछता हूँ, कि जब मुझे बुढ़ी स्त्री पसन्द नहीं है, तो क्या वह तरुणी स्त्री, मुझे बुढ़ी स्त्री करेगी ? यदि नहीं, तो फिर जबरदस्ती से क्या लाभ ! अमीर ने उत्तर देकर, दोस्तों को शर्मिन्दा होना पड़ा और उन्होंने, अमीर के विवाह की बात छोड़ दी।

वृद्ध पुरुष के साथ तरुण स्त्री के विवाह के समान ही, या कुल के लोभ से बालक पुत्र के साथ तरुणी, या तरुण पुरुष के साथ बालिका भी विवाह की जाती है।  
 बाह्यका युवक और  
 बाह्यका युवनी विवाह।  
 ममत्त विवाह बेजोड़ हैं। उसे विवाह  
 समाज में भयकर हानि फैलाने वाले, भ  
 सभ्यता का जावन दु (मद नताने वाले और पारलौकिक जीवन  
 कटमासीण करने वाले हैं।

बेजोड़ विवाह से होने वाली समस्याओं का समाधान करना शक्ति से परे का काम है, फिर भी संक्षेप में कुछ हानि बताई जाती है। बेजोड़ विवाह से कुल की हानि होती है। विधवा की समस्या बढ़ती है, निम्नसे चर्च-वृद्धि के साथ ही, आत्म हानि भ्रूण हत्या आदि होती रहती है और अन्त में अनेक विधवा बेशर्या बन कर अपना जीवन घृणित रीति से बिताने लगती। समाज में स्त्रियाँ की कमी होने से, कई युवक अविवाहित रह जाते हैं और दुःखचारी बन जाते हैं। बेजोड़ पति पत्नी से उत्पन्न मन भी अशक्त, अल्पायुषी और दुर्गुण' होता है।

नैन शास्त्रा म, ऐसा एक भी प्रमाण नहीं मिलता, बेजोड़ विवाह का पोषण हो। अन्य म यां में भी, बेजोड़ विवाह निषेध ही किया गया है। जैसे —

कथां यच्छ्रुति वृद्धाय नीचाय धन लिप्सया ।

कुर्याय कुर्यानाय स मता जायते नर ॥

एक-दुःखाय

- 'को पिता अपनी कन्या-वृद्ध, नीच, धन के छोभी, कुरूप और लज्जित को दत्त है वह प्रेता-योनि में जन्म लेता है ।'

इसी प्रकार कन्या विक्रय के विषय में कहा है -

अपेनापि हि शुभं न पिता कन्या ददाति य ।

सौत्र बहु वर्षाणि पुरीष मूत्र मश्नुते ॥

आयतन्व स्मृति ।

'कन्या देकर बहने में, योषा भी धन लेने चाहता, पिता बहुत (25 सौ वर्ष तक में निदान करके पिता मृत जाता रहता है ।'

आधुनिक अनमल विवाह प्रथा की, और भी बहुत समाधान की जा सकती है। लेकिन विस्तार भय सं ऐसा नहीं किया। यहाँ तो सल्लिप्त में कवल यह बताया गया है कि आजकल विवाह प्रथा, पहल का विवाह प्रथा से थिक्कुल भिन्न है और भिन्नता स अनर हानियों हैं।

अधिकोश आधुनिक विवाहों में, अपत्य भी सीमातीत है। अविश्वानी, रण्डी, धाने मारत और शक्ति भोजनानि पर म धारण ।

में इतना अधिक द्रव्य नष्टा जाता है कि चित्तन द्रव्य सं, सैंकडों-हजारों लोग, वर्षों पर मरत हैं। धनिक लाग विवाह क अपव्यय द्वारा, गरीबों का धन-भाग में कौंने विद्धा न्त हैं। धनिकों के आटम्यर-पूर्ण मरुता आदर्श मान कर, अतक गरीब भी कर्ज लकर विवाह । आइमर करते हैं और धनिका द्वारा स्थापित इम आदर्श का मरुत धन बचन न, चिरकाल के लिए दु स्त्री धना लेते हैं।



विवाह के अपव्यय में धन की ही हानि नहीं होती, किन्तु कभी २ जन की भी हानि हो जाती है। बहुत से लोग, खाने पीने की अनियमितता से बीमार होकर मर जाते हैं और बहुत से आतिशयवाजी की अभि में मुलस कर, विवाह की भेंट हो जाते हैं। कई युवक विवाह में आई हुई बेटियों के ही शिकार बन जाते हैं। इस प्रकार आनकल की विवाह-पद्धति द्वारा अपना ही सर्वनाश नहीं किया जाता, किन्तु दूसरों के सर्वनाश का भी कारण उपन्न कर दिया जाता है।

आनकल समाज के समुदाय विधवा विवाह का जो प्रश्न उपस्थित है, उसके मूल कारण बाल विवाह, बेजोड़ विवाह और विवाह की खर्चीली पद्धति ही हैं। बाल विवाह और बेजोड़ विवाह के कारण एक ओर तो विधवाओं की संख्या बढ़ जाती है और दूसरी ओर बहुत से पुरुष अविवाहित ही रह जाते हैं। इसी प्रकार विवाह की खर्चीली पद्धति के कारण भी अनेक गरीब परतु योग्य युवक अविवाहित रह जाते हैं। क्योंकि उनके पास वैवाहिक आह्वान करने की दृष्टि नहीं होता। यदि बाल विवाह और बेजोड़ विवाह बन्द हो जायें, विवाह में अधिक खर्च न हुआ करे, तो विधवाओं और अविवाहित पुरुषों की बढ़ी हुई संख्या न रहने पर सम्भवतः विधवा विवाह का प्रश्न आप ही हल हो जाये।

सारंश यह कि पूर्व समय में, विवाह तब किया जाता था, जब पति पत्नी, सर्वविरति ब्रह्मचर्य पालने में अपने की असमर्थ

शांति और आधुनिक  
विवाहों में प्रचल  
अन्तर ।

मानते थे । अर्थात् विवाह कोई आवश्यक  
कार्य नहीं माना जाता था, लेकिन आजकल  
विवाह एक आवश्यक-कार्य माना जाता है ।  
जीवन की सफलता विवाह में ही सम्भवी

जाती है । जब तक लड़के-लड़की का विवाह न हो जावे, तब तक  
वे दुर्भाग्यी समझे जाते हैं । इसी कारण आवश्यकता और अनुभव  
के बिना ही विवाह कर दिया जाता है और वह भी बेचोड़ तथा  
हजारों लारस रूपसे व्यय करके घूमघाम के साथ । पूरे समय की  
विवाह प्रथा समाज में शान्ति रखनी थी, समाज को दुर्गचार से  
घरानी थी और अन्धी सन्तान उत्पन्न करके, समाज का हित  
साधन करती थी । आजकल की विवाह प्रथा इसके विपरीत कार्य  
करती है । बाल विवाह, बेजोड़ विवाह और त्रिशह की रचौली  
पद्धति, समाज में अशान्ति उत्पन्न करती है, लोगों को दुर्गचार में  
प्रवृत्त करती है और दण्ड एवं अल्पायुषी सन्तान द्वारा समाज का  
अहित करती है ।

वैवाहिक विषय के घर्षण पर से कोई यह कह सकता है,  
कि साधुओं को इन साँसारिक बातों से क्या मतलब और वे ऐसी

शुद्ध समाधान ।

बातों के विषय में उपदेश क्यों दे ? इसका  
उत्तर यह है, कि यद्यपि इन साँसारिक बातों

से साधु लोग परे हैं लेकिन साधुओं का धार्मिक जीवन नीति-पूर्ण  
संसार पर ही अवलम्बित है । यदि संसार में सर्वत्र अनीति छा

चाव, तो धार्मिक जीवन के लिए स्थान भी नहीं रह सकता। इसी दृष्टिकोण से—विवाह की विधि व्रतान के लिए ही शास्त्र की कथा में, विवाह व्रतन में जुड़ने वाले स्त्री पुरुष को समानता आदि का वर्णन किया है। यह बात दूसरी है, कि उनमें बाल विवाह, अममय के सहवास आदि का निषेध नहीं है। लेकिन उस समय इस प्रकार की कुप्रथाएँ थीं ही नहीं, इसलिये इस प्रकार के उपदेश की भी आवश्यकता नहीं। अन्यथा, पूर्ण ब्रह्मचर्य का ही विधान करने वाले होने पर भी, जैन शास्त्र ऐसे अपूर्ण नहीं हैं कि उनमें सौंसारिक-जीवन की विधि पर कथाओं द्वारा प्रकाश न डाला गया हो। 'सरीसया कथा, सरीसया तथा' आदि पाठ इसी बात के द्योतक हैं, कि विवाह समान युवावस्था में ही होता था।

(९)

## देशधिरति ब्रह्मचर्य-व्रत ।

मातृवत्परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्टवत् ।

आत्मवत्सर्वभूतानि य पश्यति स पश्यति ॥

जो मनुष्य पराई स्त्री को माता के समान जानता है, पराये धन को मिट्टी के टुकड़े के समान मानता है और सब प्राणियों को अपने ही समान देखता है, वही परार्थ देखने वाला है।

उपर यह तो कहा जा चुका है, कि जो पुरुष या स्त्री पूण ब्रह्मचर्य पालन करने में समर्थ हैं उन्हें विवाह न करना चाहिए और नो एमा करने में असमर्थ हैं, उनके विवाहित जीवन में ब्रह्मचर्य । लिए विवाह करना, अनुचित भी नहीं माना जाता । अथ देखना यह है कि विवाह करके भी ब्रह्मचर्य का पालन किया जा सकता है या नहीं आर किया जा सकता है तो किस रूप में ।

प्रत्येक धात का, ऊँचे से ऊँचा और नीचे से नीचा आदर्श रहता ही है । मनुष्य मात्र से एक ही आदर्श की ओर चलन की आशा करना उचित नहीं है, क्योंकि सब लोगों में, समान बुद्धि, शक्ति, साहस, धैर्य आदि नहीं होते । इस धात की दृष्टि में रखकर ही जैन शास्त्रों ने ब्रह्मचर्य का भी ऊँचे से ऊँचा और नीचे से नीचा ऐसे दोनों ही प्रकार के आदर्श बताये हैं । ब्रह्मचर्य के सबसे ऊँचे आदर्श का नाम, सर्वविरति पूर्ण ब्रह्मचर्य है और उससे नीचे आदर्श का नाम देशविरति ब्रह्मचर्य है । देशविरति ब्रह्मचर्य, अर्थान् आँ'शर ब्रह्मचर्य ।

विवाहित पुरुष-स्त्री भी देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत का पालन भली प्रकार कर सकते हैं । बल्कि, देशविरति ब्रह्मचर्य को स्वीकार करना, धार्मिक एवं नैतिक-दृष्टि से प्रत्येक पुरुष स्त्री का कर्तव्य है । देशविरति ब्रह्मचर्य को स्वीकार करने से, विवाहित स्त्री पुरुष के सामाजिक कामों में, किसी प्रकार की बाधा नहीं आती । क्योंकि

सूर्यविरति ब्रह्मचर्य में मैथुनाद्वा महित सब प्रकार के मैथुन का मन, वचन और काय से करने, कराने और अनुमोदन करने का त्याग लिया जाता है। लेकिन देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत का आदर्श, इससे बहुत नीचा है। देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार करने वाला जो प्रतिज्ञा करता है, वह इस प्रकार होती है —

सदा सतोसि ए श्वसेम मद्गुण पचकत्वामि जात्र जीवाए  
( देवदेवीसम्बन्धा ) दृविह तिविहेण न करमि न कारवमि  
मणसा वयसा कायसा मनुष्यमनुष्यणी एव तिर्यचतिर्यचणी  
सम्बन्धी एकविह एगविहेण नकरमि कायसा—

इस प्रतिज्ञा के अनुसार, देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार करने वाले पुरुष या स्त्री के लिए, सासारिक काम न रुकन योग्य बहुत गुजायश रह जाती है। इसलिए विवाहित पुरुष स्त्री से, देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार करना एवं पालन करना चाहिये।

पुरुष और स्त्री के भेद से, देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत का नाम स्वदार सन्तोष व्रत और स्वपति सन्तोष व्रत है। इन दोनों व्रत की अलग अलग व्याख्या की जाती है।

## स्वदार सन्तोष-व्रत ।



जिस ब्रह्मचर्य-व्रत में, स्वदार का आगार रक्खा जाता है, उसे स्वदार-सन्तोष-व्रत कहते हैं। इस व्रत को स्वीकार करने में

उन सभी स्त्रियां म मैथुन करने का त्याग करना पड़ता है जो स्व की नहीं हैं। जो स्त्री स्व (सु.) का कहलाती है उसके सिवा अन्य सभी स्त्रियां परदार हैं। और यह व्रत स्वीकार करण में ऐसी सभी स्त्रियों से मैथुन-सेवन का त्याग लिया जाता है। इस प्रकार, गृहस्थ पुरुष निम्न देशभिरति ब्रह्मचर्य व्रत को स्वीकार करते हैं, उसका नाम स्वदार सन्तोष व्रत और इस व्रत को स्वीकार करने से, परदार का प्रिभण (त्याग) किया जाता है।

स्वदार सन्तोष व्रत का बहुत माहात्म्य है। शास्त्रकारों का यह है, कि इस व्रत को स्वीकार करन वाले पुरुष की कामच्छा मामित हो जाती है जिससे वह असीम कामेच्छा के पाप से बच जाता है। परस्त्री सेवन का त्याग करने वाले पुरुष का चित्त, परस्त्री की ओर जाता नहीं, जिससे उसके द्वारा परस्त्री सेवन का पाप नहीं होता। राचारी की अपेक्षा उसका शरीर बलवान, मे शधी और दीर्घायुपीता है और उसकी सन्तान भी ऐसी ही होती है। अन्य ब्रथकारों भी, इस व्रत का बहुत माहात्म्य बताया है। पुराणों के रचयिता ससजी कहते हैं—

स्वदार यस्य सन्तोष परदार निवर्तनम् ।

अपवादोऽपिनो यस्य तस्य तीर्थं फलं गृहे ॥

‘स्वदार में सन्तोष करने और पराई स्त्री से निवर्त्तनेवाला पुरुष निन्दा से बच जाता है उसका किसी प्रकार अपवाद नहीं होता तथा घर में ही उसे तीर्थ का फल मित्र जाता है ’

स्वदार-सन्तोष व्रत स्वीकार करने से, दाम्पत्य प्रेम में भी वृद्धि होती है। पति पत्नी में फलह नहीं होता। लोक में निन्दा नहीं होती, किन्तु विश्वासपात्र माना जाता है। धन, वैभव, बल, बुद्धि, यश, कीर्ति, निर्भयता और सद्गुण सुरक्षित रहते हैं। परलोक में भी वह उन दुर्यों से बचा रहता है, जो परदार गामी को प्राप्त होते हैं। नैन सिद्धान्त कहते हैं, ऐसा पुरुष-राज्य भण्डार में राज्य अन्ते उर में साहुकार के भण्डार में और अन्ते उर में जावे तो भी उसकी अप्रतीति नहीं होती।

स्वदार सन्तोष व्रत रहित यानी परदार-गामी पुरुष, दुराचारी कहाता है और वह, अपनी स्त्री को भी सन्तुष्ट रखने में असमर्थ रहता है। ऐसे पुरुष का विश्वास, न स्वस्त्री ही करती है, न पर-स्त्री ही। स्व-पत्नी से सदा फलह बना रहता है। घर, दुःखमय हो जाता है। सन्तान, या तो होती ही नहीं और होती भी है, तो रुग्ण, अल्पायुषी और दुराचारिणी। क्योंकि, माता पिता के सद्गुण दुर्गुण का प्रभाव, सन्तान पर पड़ता ही है।

परदार गमन  
निन्दा।

परदार-गामी पुरुष की, लोक में अत्यन्त निन्दा होती है कोई उसका विश्वास नहीं करता। सब लोग, यहाँ तक कि अपर्न

स्त्री भी, घृणा की दृष्टि से देखती है। उसका जीवन, क्लिप्त, दूषित एवं पापपूर्ण रहता है। पर स्त्री की इच्छा रखनेवाले पुरुष की, सचित कीर्ति भी नष्ट हो जाती है। यश उसके पास भी नहीं फटना। धन वैभवं, उसे त्याग देते हैं। यत्न, सौन्दर्य, साहस और धैर्य का उसमें अभाव सा हो जाता है। वह, दुर्गुणा और पातकों का घर बन जाता है। उसमें से, सदगुण निकल जाते हैं। भय, प्राण, रोग, शोक, अपमान, दीनता आदि समस्त दुःख उसे घेर लेते हैं। कभी कभी तो मृत्यु का भी आलिंगन करना पड़ता है। परदार गामी का मन, सदैव कलुषित बना रहता है, जिससे नीति और धर्म से निषिद्ध कार्य भी सदा करता ही रहता है। इस प्रकार, उसका इहलौकिक जीवन भी दुःखमय बन जाता है और परलोक में भी उस नरक की घोर में घोर वेदना सहनी पड़ती है।

पर स्त्री-सेवन की बुराइयों बताते हुए, गांधीजी लिखते हैं कि 'जनों पर स्त्री गमन न हो, वहाँ पर प्रतिशत पचास डाक्टर बेकार हो जावेंगे। पर-स्त्री-गमन से होने वाले रोगों की दवाइयाँ भी ऐसी जहरीली होती हैं, कि यदि उन दवाइयों से एक रोग का नाश मालूम होने लगता है, तो दूसरे रोग घर घर लते हैं और पीढ़ी दरपीढ़ी चल निकलते हैं।'

गांधीजी के कथन का अभिप्राय यह है, कि पर-स्त्री-सेवन से रोग और अशक्तता का एसा आधिपत्य हो जाता है, कि निसका फल भावी सन्तति को भी भोगना पड़ता है। वे आगे कहते हैं कि



‘मनुष्य के सामानिक जीवन का केन्द्र, एक-पत्नीयन ही है।’ इसलिये, स्वदार सन्तोष व्रत स्थापार करके, परस्त्री का त्याग करना ही लाभप्रद है। अन्य मन्वसार भी कहते हैं—

दुराचारा हि पुरुषो लोके भवति निदिशत ।  
 दुख भारी च समस्त व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥  
 नहींदृशमनायुष्य लोके किञ्चन दृश्यते ।  
 यादृश पुरुषस्येह परदागेपसेवनम् ॥  
 मनुस्मृति ।

‘दुराचारी पुरुष लोक में निदिशत होश ड सदा दुःखी रोग ग्रस्त और अल्पायुवी होता है। इस समार में पुरुष का आयुबल क्षीण करने वाला क्या कोई भी काय नहीं है, जैसा कि पराई स्त्री के सारमण करना है।’

परदार-गमन से, कवल आयुर्वल ही क्षीण नहीं होता किन्तु धन, साहस, धन वैभय आदि भां नष्ट हो जाते हैं। कैसा भी धनवान हो, कैसा भी वैभयशाली हो और कैसा भी साहसा हो लेकिन यदि उसमें परस्त्रा चाहन का रोग है, तो उसका समस्त धन वैभय और साहस, गर्म तरे पर गिरी हुई जल की धू के समान नष्ट हो जाता है। पराई स्त्री की इच्छा करने वाला, अपनी ही हार्ति नहीं करता, किन्तु अपने कुल, परिवार और मित्रों की भी हार्ति करता है। राजा रावण में, धन की कमी नहीं थी, वैभय भी सुथा था और साहस भी पर्याप्त था, लेकिन वह सत्पथारी स्वदार-सन्तोष

न था, इमलिण सका नल, वैभय तथा साहस किमी काम न आया और परिवार सहित नष्ट हो गया। यही घात मणिरथ पञ्चोत्तर आदि के लिण भी है। इनमें भी यदि सदाचार का अभाव न होता, तो इनके नष्ट होने का भी कोई ऐसा निन्द्य कारण न था। बौद्ध ग्रन्थ धम्मपद में लिखा है, कि जो अविचारी, पर स्त्री की अभिलाषा करता है, उसे चार फल मिलते हैं—(१) अपवश (२) निद्रानाशक चिन्ता, (३) दुष्ट और (४) नरक। इस प्रकार अन्य ग्रन्थों ने भी, परदार गमन की निन्दा ही की है।

पराई स्त्री के साथ रमण करने वाला पुरुष, कभी कभी

कैव घोर पाप में प्रवृत्त हो जाता है और

परदार-गमन की हानि

पर एक उदाहरण।

पराई स्त्री के त्याग वाला पुरुष, ऐसे पाप से

किस प्रकार बच जाता है, इस लिए

एक दृष्टान्त दिया जाता है।

एक बार, तीन आदमी विदेश गये। उन तीनों में से एक तो घतवारी श्रावण था—उसने स्वदार स्तोत्र घत स्वीकार करके पर-स्त्री का त्याग कर दिया था—और शेष दो आदमी, घत रहित एक परदार गामी थे। इन तीनों की माताएँ, बहुत पहले से ही घर से निकल गई थीं, जो उसी स्थान पर वैश्यावृत्ति करती थीं, जहाँ ये तीनों आदमी गये थे। उन त्यागपत्र रहित दोनों आदमियों ने, एक रात में, वैश्यागमन का विचार किया। इस विचार को, उन्होंने अपने श्रावक मित्र से भी प्रकट किया। श्रावक ने, अपने साथियों

के विचार का विरोध किया तथा धरयागमन से इनकार कर दिया। उन दोनों ने, श्रावक से बहुत आग्रह किया और कहा, कि तुम्हें धरया के यहाँ जाने की पैसे हम देंगे, तुम आओ। यहाँ तब कि दोनों साथियों ने, श्रावक को धरया के यहाँ जाने के लिये विवश कर दिया।

तीनों मित्र, उन्हा तीन धरयात्रा के यहाँ गये, जो इनकी माताएँ थीं। योगा योग स तीनों आश्रमी श्रवण - माँ के ही यहाँ गये। श्रावक को तो परस्त्री-भोग का त्याग था, इसलिए वह वैश्यारूपिणी अपनी माता के पास बैठ गया और उससे बातें करने लगा। दाता ही बातों में इन दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया। श्रावक ने अपना माता से पूछा कि - नू यहाँ कैसे आगई? उसने उत्तर दिया कि मैं और मरु पड़ोस की दो साथिनी जो अमुक-अमुक की माँ हैं—हम तीनों यहाँ बहुत दिनों से धरयावृत्ति करती हैं। श्रावक ने कहा—रात्रय हुआ। व दोनों भी यहाँ आयें और अपने ही माताओं के यहाँ गये हैं। जल्दी दौड़ कर उन्हें बचाओ।

माता और पुत्र, उन दोनों के यहाँ दौड़ कर गये, परन्तु इतने जाने से पूर्व ही वे दोनों अपनी अपनी माँ से भ्रष्ट हो चुके थे।

श्रावक की प्रेरणा से ये तीनों स्त्रियाँ भी धरया वृत्ति छोड़ कर अपने घर चलीं। श्रावक के दोना मित्र भी साथ ही थे लेकिन उन दोनों मित्रों का अपने कृत्य पर इतनी लज्जा हुई कि वे दोनों जहाज से बूद कर डूब मरे।

यदि उस एक श्रावक की ही तरह ये दोनों मित्र भी परदार गंगे हाने, ना इस प्रकार माँ के साथ भ्रष्ट होने पर लज्जित होकर रने का मौका ही क्यों आता ? आनकल भी इस प्रकार की कइ ग्नाएँ सुनने में आती हैं, जिनमें परदार-गामी पुरुष ने अपनी पुत्री आदि के साथ भी दुराचार किया। जम्बू चरित्र म भी ऐसी कई पायें आती हैं। ऐसे घोर पापों से बचने के लिए भी, स्वदार न्तोप व्रत स्वीकार करना और परम्प्री का त्याग करना उचित है।

आनकल के पुरुषा में, शायद ऐसे पुरुष तो अधिक निकर की तो मास-मदिरा के त्यागी हूँ, लेकिन परदार-त्यागी पुरुष सम्भवत बहुत कम निकलेगे। मास मदिरा के त्यागी और परदार भोगी पुरुष, संभवत परदार को मास-मदिरा की अपेक्षा ब्राह्म समनते हैं, लेकिन वास्तव में मास-मदिरा अपेक्षा परदार ब्राह्म नहीं है, किन्तु मास मदिरा के समान ही अज्य है। मास मदिरा की ही तरह परदार-सेवन भी बुद्धि, धन, न्दर्य, दया, महानुभूति और धर्म का नाशक एवं हिंसादि पापों प्रवृत्त करने वाला है। ऐसा होते हुए भी, बहुत से लोग इस पाप मास-मदिरा के पाप की तरह नहीं बचते।

उपासक दशाङ्ग सूत्र के ८ वें अध्यायन में, महाशतक श्रावक का बण्ण आया है। महाशतक की स्त्री रेवती मान्म भक्षिणी ती, किन्तु महाशतक पर ही अनुरक्त थी। इस कारण शायद महा

शतरु ने यह विचार हागा कि यदि मैं इस त्याग दूगा, तो मम्मथ है कि यह व्यभिचार का भयंकर पाप करने लगे। जान पड़ता है, कि इसी विचार से महाशक्त राजा ने, मास भक्षिणी रेंवना का त्याग नहीं किया हो। इससे यह सिद्ध हुआ कि महाशक्त की दृष्टि में व्यभिचार यदि मास भक्षण से अधिक नहीं, तो उसका समाप्त ही पाप था।

यहूत में पुरुष, अपनी स्त्री में तो पतिग्रन्थ पालन कराना चाहते हैं, उस पर पुरुष गामिनी नष्टा लगना चाहत, लेकिन अपने आपकी, परदार-गमन के लिए स्वतन्त्र समझते हैं। हम लोग जान इस कर यत्रुष धोन हैं और आम राने की इच्छा रखते हैं। किसी नियम का पालन दूसरे में तभी कराया जा सकता है, जब स्वयं भी उसका पालन करे। जब तक स्वयं द्वारा किसी नियम का पालन न किया जाये, तब तक दूसरे में उस नियम का पालन कराने में सफलता नहीं मिल सकती। यह बात दूसरी है कि परदारगामी पुरुष को स्त्री, अपना धर्म विचार कर स्वयं ही सदाचारिणी रह, लेकिन परदारगामी पुरुष को सैद्धान्तिक रूप में यह अधिकार नहीं रहता कि यह अपनी स्त्री को सदाचारिणी रहने के लिए बाध्य कर सकें। यह अधिकार उसे तभी हो सकता है, जब वह भी सदाचार का पालन करता हो। ब्रह्मि स्त्रियों को पर पुरुष-गामिनी बनाने वाले, परदार-गामी पुरुष ही हैं। ज्यादातर

का स्वयं ही पर पुरुष गामिनी नहीं होती, किन्तु परदार गामी पुरुष हा ध्यान लिए किसी स्त्री को पर पुरुष गामिनी बताता है। अतः अपनी स्त्री का पतिव्रता, सदाचारिणी और पतिपरायणा रखन क लिए भी, स्वदार सन्तोष-ग्रन स्वीकार करके पालन करना चाहिये।

यद्यपि हम ग्रन में, स्व-स्त्री का आगार रहना है, लेकिन हमका यह अर्थ नहीं हो सकता कि स्व-स्त्री स भी मैथुन करने स

स्व-स्त्री सेवन में  
निषिद्धता।

स्वच्छन्दता से काम लिया जावे। क्योंकि इस ग्रन का नाम स्वदार सन्तोष है। स्वगार रमण नाम नहीं है। यदि स्वदार-रमण नाम

होना, तब तो स्व-स्त्री क सेवन में स्वच्छन्दता को स्थान हो सकता था, लेकिन स्वदार सन्तोष नाम में, स्वच्छन्दता को स्थान ही नहीं होता। इसलिए आगार होने पर भी, स्वदार-सेवन में नीतिभारों का बतवाई हुई मर्यादा का पालन करना आवश्यक है। नीतिभारा का कथन है —

सन्तानार्थञ्च मैथुनम् ।

‘मैथुन का विधान सन्तान उत्पन्न करने के लिए ही है।’

वैद्यक मतानुसार, रजोदर्शन से पूर्व स्त्री-पुरुष का ससर्ग सन्तानोत्पत्ति क लिए निरर्थक है और श्चतुस्तान के सिवा अन्य समय में किये गये मैथुन से, वीर्य वृथा जाता है। हमलिये ग्रन्थभारों ने कहा है —

शतक ने यह विचार होगा कि यदि मैं इसे त्याग दूंगा, तो सम्भव है कि यह व्यभिचार का भयकर पाप करने लगे। जान पड़ता है, कि इसी विचार में महाशक्त श्रावण न, मास भक्षिणी रचना का त्याग नहीं किया हो। मस यह सिद्ध हुआ कि महाशक्त की दृष्टि में व्यभिचार यदि मास भक्षण से अधिक नहीं, तो उसका समान ही पाप था।

यहूत से पुरुष, अपनी स्त्री से तो परिश्रम पालन कराना चाहते हैं, उसे पर पुरुष गामिनी नहीं करना चाहते, लेकिन अपने

स्त्री को सदाचारिणी  
ग्रन्थ के सिद्धे स्वयं  
सदाचारी बने।

आपको, परदार-गामी के लिए स्वतन्त्र समझते हैं। मस लोग जान-बूझ कर बन्धुल श्रोत हैं और आम खान की इच्छा रखते हैं।

किसी नियम का पालन दूसरे से तभी कराया

जा सकता है, जब स्वयं भी उसका पालन करे। जब तक स्वयं द्वारा किसी नियम का पालन न किया जाये, तब तक दूसरे से उस नियम का पालन कराने में सफलता नहीं मिल सकती। यह बात दूसरी है कि परदारगामी पुरुष की स्त्री, अपना धर्म विचार कर स्वयं ही सदाचारिणी रहे, लेकिन परदारगामी पुरुष को सैद्धान्तिक रूप में यह अधिकार नहीं रहता कि वह अपनी स्त्री को सदाचारिणी रहने के लिए बाध्य कर सके। यह अधिकार उसे तभी हो सकता है, जब वह भी सदाचार का पालन करता हो। बलिक स्त्रियों को पर पुरुष-गामिनी बनाने वाले, परदार-गामी पुरुष ही हैं। ज्यादातर

स्त्री स्वयं ही पर पुरुष गामिनी नहीं हाना, किन्तु परदार गामा पुरुष हा अपन लिए किसी स्त्री को पर पुरुष गामिनी धनाता है। अत अपनी स्त्री को पतिव्रता, मदाचारिणी और पतिपरायणा करने के लिए भी, स्वदार सन्तोष ग्रन्थ स्वीकार करते पालन करना चाहिये।

यद्यपि इम ग्रन्थ में, स्व स्त्री का आगार रहता है, लेकिन इममें यह अर्थ नहीं हो सकता कि स्व स्त्री में भी मैथुन करन में

स्व-स्त्री सेवन में नियमितता। स्वच्छन्दता से काम लिया जावे। क्योंकि इम ग्रन्थ का नाम, स्वदार सन्तोष है। स्वदार रमण नाम नहीं है। यदि स्वदार-रमण नाम

होता, तब तो स्व स्त्री के सेवन में स्वच्छन्दता को स्थान हो सकता था, लेकिन स्वदार सन्तोष नाम में, स्वच्छन्दता को स्थान ही नहीं रहता। इसलिए आगार होने पर भी, स्वदार-सेवन में नीतिकारों का बतवाई हुई मयादा का पालन करना आवश्यक है। नीतिकारों का अर्थ है —

सत्तानार्थञ्च मैथुनम् ।

‘मैथुन का विधान, सत्तान उपाय करने के लिए ही है।’

वैद्यक मतानुसार, रजोदर्शन से पूर्व स्त्री पुरुष का ससर्ग सत्तानोत्पत्ति के लिए निरर्थक है और ऋतु स्नान के मित्रा अन्य समय में किये गये मैथुन से, धीरे धीरे बृथा जाता है। इसलिये ग्रन्थकारों ने कहा है —



रजो दर्शनत पूर्व स्त्री भसर्ग मा चरेत ।

भविष्य पुराण ।

'रजोदर्शन से पहले, स्त्री ससर्ग न करे ।'

इस प्रकार, ऋतु स्नान से पूर्व, स्त्री सेवन का भी निषेध किया गया है। ऋतु स्नान से पूर्व, स्त्री-सेवन द्वारा धीर्य को वृथा नष्ट करने वाले के लिए ग्रन्थकार कहते हैं —

व्यर्थीकारेण शुक्रस्य ब्रह्महत्या मवाप्नुयात् ।

निष्य ति०धु ।

धीर्य हो वृथा खोने से, ब्रह्महत्या का पाप होता है ।'

इस प्रकार स्वच्छन्दता से, अपनी स्त्री का सेवन करने का भी निषेध किया गया है। वैशक मतानुसार, स्व-स्त्री के साथ भी अति मैथुन करने से, शारीरिक शक्ति क्षय होनी है, धीर्य पतला पड़ता है, सन्तान दुर्बल, अल्पायुषी और दुर्गुणी होती है। अनि मैथुन करने वाला अच्छे कार्य नहीं कर सकता। ऐसा पुरुष यदि कभी अपनी स्त्री से अलग रह, तो उसमें व्यभिचार-दोष का आ जाना बहुत सम्भव है। क्योंकि, वह अपनी मैथुनच्छा को रोकने में असमर्थ हो जाता है, इसलिए दुराचार में पड़ना आश्चर्य की बात नहीं। अति मैथुन से आँखों की ज्योति क्षीण हो जाती है, दाँत गिर जाते हैं और शरीर से दुर्गन्ध आने लगती है। अति मैथुन के कारण क्षय, प्रमेह, स्वप्नदोष, नपुंसकता आदि रोग उत्पन्न होते हैं और आयुर्वल कम होता है। वैशकग्रन्थों में कहा है —

अति स्त्री सम्प्रयोगाच्च रक्षेदात्मनमात्मवान् ।  
 क्रीडाया मपि मेधावो द्वितार्यो पञ्चिर्जयेत् ॥१॥  
 शुन कास उवर श्वास कार्य्य पाद्वाभयक्षया ।  
 अति व्यशयाउजायन्ते गगाथाक्षेप का दय ॥२॥

‘अति स्त्री प्रसङ्ग से अचने को बचाव रहना, सावधान रहना मनुष्य को उचित है । अरना भडा चाहने वाले बुद्धिमान पुरुषों के लिए स्त्री में भी अति प्रसङ्ग बड्य है । अति मैथुन से शुब्, खाँसी, उवर, रश्म, दुश्चला, पीलिया, वय आदि बात व्याधि उत्पन्न होती हैं ।’

तात्पर्य यह है कि अपनी स्त्री से भी अति मैथुन घर्ज्य है । अति मैथुन क माय हा, नीतिहारों न, असमय क मैथुन का भी नेपर किया है । दिन का समय, रात का पहला और अन्तिम पहर, तथा स्त्री गर्भवती हो वह समय मैथुन के लिए निषिद्ध है । दिन म या रात क पहल और अन्तिम पहर म, स्त्ररी स किया गया थुन भी शरीर सम्यगी ये ही हानियाँ करने वाला होता है, जो अनियों परस्त्री गमन से होती हैं । इसी प्रकार गर्भवती स्त्री से थुन करने से, गर्भ के बालक पर बहुत युग प्रभाव पडता है । स्त्री-कमी तो माता पिता की इस कुचेष्टा से, गर्भ में ही बालक की न्यु हो जाती है । यदि बालक जमा भी, तो वह बचपन स ही प्रसङ्गचर्य की कुचेष्टायें करने लगता है और अन्न में, महाभयङ्ग अरिणाम को प्राप्त होता है । गर्भवती स्त्री से मैथुन करने पर, उ त्रा भी रोग घन्त हो जाती है, तथा प्रसूति रोगादि से मर भी जात

है। गर्भवती से मैथुन करने का कार्य को, यदि मनुष्य हत्या के समान पाप कहा जाये, तब भी कोई अत्युक्ति न होगी।

गर्भवती स्व-स्त्री के समान, उमर स्वस्त्री से भी मैथुन करना उचित है, जिसका बालक छोटा हो। छोटे बालक को माँ के साथ, शुरुआत में मैथुन करना भी, वैद्यक और नाति के अनुचार द्वारा प्रदत्त है। ऐसी स्त्री के साथ मैथुन करने से और उमर स्त्री के गर्भवती हो जाने से, उस छोटे बालक का विकास रुक जाता है और गर्भ का बालक भी कमजोर, मृग्य एवं अल्पायुषी होता है। इसलिए छोटे बच्चे वाली स्व-स्त्री से भी ऐसा मैथुन करना उचित है।

वर्तमान समय के परदार-त्यागी और स्वदार-सन्तोषी पुरुषों में सम्भवतः ऐसे पुरुष तो गिन्ती के ही निकलेंगे, जो स्व-स्त्री-सेवन में नीतिकार्य की बुराई हुई मर्यादा का पालन करते हैं। लोगों के मुँह में, एक-दो या चार छत्रियों के लिए मैथुन का त्याग करने की बात सुन कर, समाज की पतनारम्भ पर दया आती है। उनसे इस त्याग करने की बात में यह स्पष्ट है, कि ऐसा कोई ही दिन जाता होगा, जिस दिन वे मैथुन से बचे रहते हों। यद्यपि नातिकार्य न शुरुआत के मिला अथवा समय में स्त्री गमन का नियोजन किया है और इस बात का समर्थन वैद्यक ग्रन्थ भी करते हैं, तथा प्राकृतिक रचना पर दृष्टिपात करने से भी यही प्रकट है, फिर भी लोग इस मर्यादा का अतिक्रमण करते हैं। ऐसे लोगों को मनुष्य कहने का

इस समय के स्वदा  
स तोपी।

कारण केवल उनकी शारीरिक रचना के सिवा और कुछ नहीं रत्ता। क्योंकि निम्न नियमों का पालन बुद्धिहीन पशु भी करते हैं, उन नियमों का पालन, यदि बुद्धि-मम्पन्न मनुष्य न करे, तो फिर उनमें पशुओं की अपेक्षा शारीरिक रचना के सिवा कौत्सी विशेषता रही? पशु भी प्रायः ऋतुकाल के सिवा अन्य समय में मैथुन नहीं करता। यदि मनुष्य होकर भी इस नियम की अवहेलना करता है, तो इससे अधिक पतन की घात और क्या होगी? स्वप्नर सतोप-व्रत का पूर्णतया पालन तभी सम्भूतना चाहिये, जय परस्त्री का त्यागने के साथ ही, स्व स्त्री के संग में भी अनियमितता न की जावे यानी मन्तोप से काम लिया जाव।

स्वप्नर सतोप-व्रत की विशेषता तय है, जय मौजूदा पत्नी के सिवाय त्याग कर दिया जाय, जैसा कि आनन्द आश्रम ने, अपनी शिवानन्दा मा का आगार रत्ता था। एक पत्नी व्रत। व्रत धारण करने के पश्चात् और विवाह करने की इच्छा न रखी जाये। पुरुषों ने, अपने प्रभुत्व में बहुविवाह या एक स्त्री के मरने पर दूसरा विवाह करने का अधिकार बढ़ा लिया है और वर्तमान समय में एक पत्नी के मरने बाद दूसरी पत्नी करने यानि दूसरा तीसरा विवाह करने की प्रथा चल पडी है इससे जेसा करना कठिन जान पड़ता है, अन्यथा प्राकृतिक रचना पर ध्यान देने एवं न्याय दृष्टि से विचारने पर, यह बात स्पष्ट है, कि हम विषय में पुरुष को, स्त्री से अधिक अधिकार नहीं हैं। चरिता

नुवाद के सूत्रों में ऐसा कोई उदाहरण नहीं दिखाई पड़ता, जो श्रावक की विद्यमान पत्नी मरने पर या विद्यमान फायदा रहते हुए भी संसारण दूसरा विवाह किया हो अर्थात् जिस प्रकार स्त्रियों एक पतिव्रत का पालन करती हैं, उसी प्रकार पुरुषों को भी, एक-पत्नी व्रत का पालन करना उचित है और जिस प्रकार, विधवा होने पर भी स्त्रियों, हमारे पुरुष के साथ विवाह नहीं करती, उसी प्रकार पुरुष को भी विधुर होने पर, दूसरी स्त्री के साथ विवाह करना उचित नहीं, किन्तु विधवाधा की तरह, विधुर को भी ब्रह्मचर्य पालना चाहिये।

## स्वपतिसन्तोष व्रत ।

कोकिलानां स्वरो रूप मारी रूप पतिव्रतम् ।

आयुष्य नीति ।

‘कोयल का रूप उसका स्वर है और मारी का रूप, उसका पति व्रत है ।’

सर्वत्रिरतिब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार करने में अभिमर्श ऐसी विवाह करने वाली स्त्रियों को विवाह करने के पश्चात् भी, स्वपति सन्तोष व्रत स्वीकार एवं पालन करना चाहिये । स्वपतिसन्तोषव्रत स्वीकार करने वाला स्त्रियों, दशविरति ब्रह्मचारिणी कहलाती है और व्यवहार तथा

अन्य प्रत्यकारों की दृष्टि में, ऐसी जिनमें ब्रह्मचारिणी सतियें भी बड़ाती हैं। जैसे—

या नारी पतिमक्तास्यात्सा सदा ब्रह्मचारिणी ।

स्त्रि ।

जो स्त्री पतिमक्ता है—दूसरे पुरुष से अनुशास नहीं करती—  
वह मक्ता ब्रह्मचारिणी कहाती है ।

स्वपति-तोषव्रत स्वीकार एवं पालन करने से, जिनमें को  
वही लाभ होते हैं, जो लाभ पुरुषों को स्वदारस-तोषव्रत से होते  
हैं। मसारावस्था में स्त्रियों के लिए, स्वपति  
सन्तोषव्रत के समान और कोई कार्य, इस

लौक तथा परलोक में हितसाधक नहीं है। दूसरे कार्य किसी एक  
ही लोका का हित साधने में समर्थ हो सकते हैं, लेकिन स्वपति  
सन्तोषव्रत से दोनों ही लोक सुखते हैं। अन्य प्रत्यकार भी  
कहते हैं—

पति या नाभिचरति मनोबाग्देह मयसा ।

सा भवृल्लोकानाप्नाति सद्भि मा-शीतिचोच्यते ॥

मनुस्मृति ।

‘जो स्त्री मन, वाणी तथा शरीर से नाभिचार नहीं करती है,  
पर पुरुष को नहीं बड़ाती है, वह इस लोक में सती सापवी कही जाती है  
और मरने पर स्वर्ग और परम्परा से मोक्ष को प्राप्त होती है ।’

स्वपतिमन्तोपव्रत स्वीकार करने वाली स्त्री के लिए, इस लक्षण तथा परलोक में, कुछ भी दुर्लभ नहीं है। पतिव्रता स्त्री का स्वभिचार-निन्दन। सत्ता-सहायता के लिए देवता, भी तत्पर रह करत हैं। शाम्बा में, सीता, द्रौपदी और सुभद्रा आदि सतियों का वर्णन, उनके सतीत्व के कारण ही आया है, एवं अग्नि का शीतल होना भी उनके पतिव्रत का ही प्रभाव है। इसका विपरीत जो स्त्रियों व्यभिचारिणी हैं, उनके लिए, इस लोक और परलोक में ब ही हानियाँ हैं, जो हाणियों व्यभिचारी पुरुष के लिए यथाई गई हैं। अन्य ग्रन्थकारों ने भी कहा है—

व्यभिचारात्तु मर्तु स्त्री लोके प्राप्नोति निन्दताम् ।  
शुभालं यान्निचाप्नोति पाप रोगैश्च पीड्यते ॥  
मनुस्मृति ।

‘पर पुरुष के साथ सम्बन्ध करने वाली व्यभिचारिणी स्त्री इस लोक में निन्दा को प्राप्त होती है, पाप तथा रोगों से पीड़ित होती है और मर कर स्वर्ग की योगिनी नहीं होती। यानी मर्क तिरक गति को प्राप्त होती है।’

स्वपति स तोपव्रत पालन करने के लिए, स्त्रियों को भी उन नियमों का पालन करना आवश्यक है, जो नियम स्वदार निग्रम। सन्तोष ग्रन्थ लेने वाले पुरुषों के लिए, यथाये गये हैं। यद्यपि, धर्म सहायिका होने के कारण स्त्रियाँ पर, अपने पति का पत्नी व्रत पर स्थिर रहने एवं नियमों का पालन कराने की जिम्मेदारी और आ पड़ती है। स्वपति सन्तोष-ग्रन्थ

श्री आराधिका स्त्री, ऐसे कोई कार्य नहीं करती, जिनके करने से नसक या उसके पति के व्रत में दोष लगता हो, या व्रत से सम्बन्ध रखने वाले नियम भंग होते हों।

देशविरति ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए, उन नियमों को आदर्श मान कर यथासम्भव उनका अनुसरण करना उचित है, जो नियम सर्वविरतिब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए बताये गये हैं। यह बात दूसरी है, कि देशविरति

ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार करने वाले लोग गृहस्थ होते हैं, इसलिए समुचित रूप में उन नियमों का पालन न कर सकें, लेकिन आशिक रूप में अवश्य पालन कर सकते हैं। उदाहरण के लिए सर्वविरति ब्रह्मचारी की तरह देशविरतिब्रह्मचारी, उम मकान में, जिम्मे में स्त्री रहते हों ( न रहने का ) नियम नहीं पाल सकता, लेकिन स्त्री को अलग अलग कमरों में रहने या एक शय्या पर शयन न कराने का नियम का पालन कर सकते हैं। इसी प्रकार, देशविरति ब्रह्मचारी स्त्री मात्र को देखने—उनसे घातचीत हँसो मजाक आदि करने—का नियम नहीं पाल सकता, तो पर स्त्री के लिए तो इस नियम को पाल हो सकता है। सारांश यह, कि देशविरति ब्रह्मचारी, सर्वथा नहीं, तो आशिक रूप में जितने भी पाल सकें, उन नियमों का पालन करना उचित है, जो नियम, सर्वविरति ब्रह्मचारी के लिए बताये गये हैं।



## देश-विरति ब्रह्मचर्य व्रत के अतिचार

शास्त्र में, प्रत्येक व्रत की चार मर्यादा बतलाई गई हैं—  
अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार। व्रत को उल्लंघन  
करने का सङ्कल्प करना अतिक्रम है। इसका अर्थ है—

व्याख्या। सङ्कल्प को पूरा करने के लिए मामूली जुटाव  
व्यतिक्रम है। व्रत को उल्लंघन करने के सङ्कल्प को कार्यरूप में परि-  
णत करने के लिए तैयार हो जाना, अतिचार है और व्रत का  
उल्लंघन करने के सङ्कल्प को पूरा कर डालना यानी व्रत को तोड़  
डालना, अनाचार है।

यद्यपि, व्रत में दूषण नो अतिक्रम और व्यतिक्रम से भ-  
लगाता है, लेकिन मानव-स्वभाव की दृष्टि में रख कर, व्यवहार में  
अतिक्रम और व्यतिक्रम से व्रत दूषित नहीं माना जाता, किन्तु  
अतिचार से व्रत दूषित माना जाता है और अनाचार से तो, व्रत  
नष्ट ही हो जाता है। इसलिए प्रत्येक व्रत के अतिचारों को जानकर  
उनसे बचना आवश्यक है।

देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत के, भगवान् महावीर ने पाँच अति-  
चार बताये हैं, जो इस प्रकार हैं—

सदार सन्तोसीए पच अइयारा जाणियव्वा न सुनटां  
यव्वा तजहा इत्तरिय परिगगहिया गमण, अपरिगगान गच्छे  
अनगकीडा, पर विवाह करणे, कामभोग तिव्वामिन्त्ते ।

स्वदार सन्तोष व्रत के पाँच अतिचार टकराए हैं, लेकिन  
भाषण योग्य नहीं हैं। ये अतिचार ये हैं—  
विगृहीता गमन, अनग व्रीडा, पर विवाह करके, इत्यादि में अत्र  
अभिधाया ।

देशविरति ब्रह्मचर्यव्रत का पढ़ना स्वदेशविरति  
गृहीता गमन है। बहुत से लोग, स्वरात्मन्वय नर भी यह  
पढ़ना अतिचार । गुञ्जाइश निसालने करके, तं हन स्वगार  
का आगार रमा है एट एट किना स्त्री  
को कुछ समय के लिए रुपये पैसे देकर—भवादी ही—अपनी  
धना ली जाय और उमके साथ स्वदार इन अवहार किया  
जावे, तो हममें स्वदारसन्तोषव्रत में अतिचार नहीं आता ।  
यद्यपि, स्वदार सन्तोषव्रत में, केवल स्वदार न निसक साथ,  
दश और समाज प्रचलित रीति सविकारों स्त्री का आगार  
रहता है, फिर भी, कई लोग उन स्वदार गुञ्जाइश निकाल  
लगे हैं। लेकिन इस प्रकार का गुञ्जाइश न कर, जो  
नहीं है, उस स्त्री को, थोड़े समय के लिए पैसा देनाकर  
साथ मैथुन करने के लिए तैयार करना, अतिचार  
करना, जय तक अतिचार के हारा ।

लगता है—प्रत नष्ट नहीं होना, लेकिन इस प्रकार का कार्य अनाचार के रूप में होने पर यानी मैथुन किया रूप में हो जाने पर प्रत नष्ट हो जाता है। इस अनिचार का दूसरा अर्थ यह भी है कि अपनी स्त्री भी तो अल्पवयस्का है, भोग योग्य नहीं है, ऐसी स्त्री से सम्भोग करना अनाचार तो नहीं, किन्तु अतिचार अवश्य है। कारण ऐसा कार्य अज्ञानता किया जाता है, बाल विवाह से ऐसा होता है।

दूसरा अतिचार अपरिगृहीता-गमन है। पगदार से नियत होने वाले बहुत से लोग, परदार त्याग कर यह अर्थ लगाते लगते हैं

दूसरा अतिचार कि जो स्त्री दूसरे की है, जिसका स्वामी कोई

दूसरा पुरुष है, उस स्त्री से मैथुन कर का हमने त्याग लिया है, लेकिन जो स्त्री किसी दूसरे की है ही नहीं जिसका कोई नियत पति ही नहीं है—जैसे बेश्या—या जिसका विवाह ही नहीं हुआ है या विवाह तो हुआ है, लेकिन अब वह पतिविहीन है—जैसे विधवा या पति परित्यक्ता—जमी स्त्री के साथ मैथुन करने से लिये हुए त्याग म, कोई दूषण नहीं आता। यद्यपि, पर स्त्री त्याग म उन सभी स्त्रिया का त्याग हो जाता है, जो अपनी नहीं हैं फिर भी कई लोग इस प्रकार गुञ्जाइश निकालते लगते हैं। लेकिन इस प्रकार की गुञ्जाइश निकाल कर, जो स्त्री अपनी नहीं हैं, स्त्री से मैथुन करने के लिए तैयार हो जाना, त्याग की प्रतिज्ञा दूषित करना है। अनिचार की मीमांसा—यानी मैथुन करने

नैपारी वद- तो त्याग की प्रतिज्ञा दूषित हो होनी है, लेकिन अतिचार की सीमा का उल्लंघन होते ही—अनाचार होने पर—लिया हुआ व्रत नष्ट हो जाता है। इस अतिचार का दूसरा अर्थ यह है कि जिस कन्या के साथ सम्बंध तो हो गया है, परन्तु पत्र माची से विवाह नहीं हुआ है, ऐसी स्त्री ( कन्या ) के साथ सम्भोग करना भी अतिचार है, क्योंकि अपनी होने हुए भी अपरिगृह्यता है।

कई लोग कहते हैं, कि वेश्या तो किसी की स्त्री नहीं है, इस कारण वेश्या सम्भोग से व्रत नष्ट नहीं होता। ऐसा कहने और समझने वाले लोग, लिये हुए व्रत और त्याग के रहस्य से ही अनभिज्ञ हैं। स्वदेश-सन्तोषव्रत और परदेश-विरमण स्त्री भोग की लालसा को सीमित करके, शनै शनै उसे कम करने के लिए हैं। लेकिन वेश्या सम्भोग, पर-स्त्री सम्भोग से भी अधिक हानिप्रद है। वेश्या-सम्भोग से, दुर्निपय-लालसा में ऐसी भयङ्कर वृद्धि होती है, कि निम्नका धर्षण करना, शक्ति से परे की बात है। वेश्या गामी पुरुष दुर्निपय-लालसा में वृद्धि होने के कारण वेश्या के पीछे अपना मग्न कुछ स्त्री पैठता है। वेश्या के पाँडे, बड़े-बड़े धनिकों को—अपना धन-वैभव ग्योर—भीख मागती पड़ी है। बड़े-बड़े परिवार वाले, वेश्या के कारण नि सहाय हो जाते हैं। बड़े बड़े यत्नान, वेश्या संग से बलहीन हो जाते हैं। इतना होने पर भी, निम्न उश्या के पीछे यह सब हाता है, वह वेश्या, किन्ती भी पुरुष की नहीं होती। वेश्या गामी पुरुष, इस

लोक म निन्दित और परलोक म दण्डित होता है । बड़े अनुभव क परचात भर्तृहरि कहते हैं—

वरया साँ मदनउरान्ना रूपेण समधिता ।  
कामिभिर्यत्न ह्यन्ते यौवनानि धनानि च ॥

'वरया, कामाग्नि की उवाचा हाती है जो रूप ईश्वर से सजी रहती है। कामी लोग, इस रूप ईश्वर से सजी हुई वरया नाम्नी कामाग्नि की उवाच में अपने यौवन और धन की घट्टि दत हैं ।'

तापयं यह रि वरया गमन भयंकर पाप है । वरया-नाभी पुम्प का अन्त करण तना कल्पित हो जाता है, कि उइ अपन पुटुम्ब की स्त्रिया पर उदृष्टि डालन में, तथा मनुष्य हत्या एव आत्म हत्या करन में भी नहीं हिचकिचाता ।

तीमरा अनिचार अनगर्नीडा है । काम सेवन क लिए प्राटित्त जा अह्न हैं, उनके सिवा शेष सब अँग, काम सेवन क लिए अनग हैं, जो अँग काम सेवन के लिए तीमरा अनिचार ।

अनग हैं, उनमे काम ग्रीडा करना, अनग कीडा कदलाना है । जैसे गुदा मैथुन, हस्त मैथुन, मुख मैथुन, कर्ण मैथुन, कुम्भर्दन, चूम्यन आदि । इन सब मैथुना की विशेष व्याख्या अश्लीलता से भरी हुई है, इमलिए विशेष व्याख्या न करक इतना ही कहा जाता है कि स्व स्त्री स भी ऐसा मैथुन करने से ब्रत म दूषण लगता है । सलिय ब्रतधारी को इस अनिचार स बचना चाहिये ।

ऐसा अतिचार, पर विवाह-करण है। आनन्द-भावक की तरह जानते हैं कि नाम लेकर स्वदार-सन्तोष प्रत स्वीकार परने के लिये करते हैं। जाना, केवल अपनी स्त्री पर सन्तोष करन की प्रतिज्ञा करता है जो प्रतिज्ञा करने के लिये मंजूर है और जिसके साथ देश और गमान प्रकृत होने में, विवाह हो चुका है। ऐसा होना पर भी कई लोग यह गुणगम निश्चयने लगते हैं, कि हमने स्व-स्त्री सन्तोष प्रत लिया है। इसलिए यदि किसी अविवाहित स्त्री से विवाह करके उसे अपनी ही बना लें, तो कोई हर्ष नहीं। ऐसा करन से हमारे प्रत में दूषण न होगा। वास्तव में ऐसा करना प्रतिज्ञा विरुद्ध है। जब तक यह धर्म अतिचार की सीमा तक है, तब तक तो प्रत में दूषण ही लाना है, लेकिन अनाचार के रूप में होने पर प्रत नष्ट हो जाता है। यदि जान दूसरी है कि कोई अपनी इच्छानुसार प्रत ले, लेकिन आनन्द की तरह स्वदार-सन्तोष प्रत लेने पर पुन विवाह करन का अतिचार नहीं रहता। इस व्याख्या के विषय में आचार्य हरिभद्र सूरिजी वृत्त 'वमधि-दु' प्रमाण है।

इस अतिचार का एक अर्थ, दूसरे का विवाह करना-कराना भी है। बहुत से लोग धर्म या पुण्य समझ कर, दूसरे लोगों का विवाह करन-करान लगते हैं, लेकिन प्रतधारी के लिए, ऐसा करना निषिद्ध है। ऐसा करन में उमका प्रत दूषित होता है।

पाँचवाँ अतिचार, काम भोग की तीव्र अभिलाषा है। स्वदार सन्तोष प्रत, काम भोग की अभिलाषा को, मन्द करने के

पाँचवाँ अतिचार । लिए ही लिया जाता है और इमीलिय इसक नाम म 'सन्तोष' शब्द लगा हुआ है । ऐसा होते हुए भी कई लोग, काम भोग को अभिलाषा को तीव्र करने की चेष्टा करते हैं, यानी वाचीकरण आदि औपधि का सेवन करते हैं, या कामोदीपन की चेष्टा करते हैं और समझते हैं, कि इसमें हमारा व्रत को काइ हानि नहीं पहुँचती । लेकिन ऐसा करने से स्वयं के सवन में सन्तोष नहीं रहता, किन्तु असन्तोष बढ जाता है । इस लिए व्रतवारी को, काम भोग की अभिलाषा तीव्र करने का उपाय न करना चाहिए । ऐसा करने से व्रत में अतिचार होता है और व्रत दूषित हो जाता है ।

इन अतिचारों को जान कर इनस वचना, देशविरति ब्रह्मचारी के लिए आवश्यक है ।\*



\* इन अतिचारों का अर्थ करने में भिन्न २ आचार्यों का भिन्न २ मत है । कोशिश करने पर भी हम ऐसा सुझावसर प्राप्त न कर सके कि सर्वा द्वारा सब आचार्य इस विषय में एक मत हो जाते । अतः ब्याजशास्त्रा महोदय की डीकानुमोदित चारणानुसार यह अर्थ दिया गया है । यदि अविश्य में कोई सर्वानुमोदित या उचित अर्थ प्राप्त हुआ, तो दूसरे सत्करण में परिशोधन कर दिया जावेगा ।

## उपमंहार ।



पूर्ण ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल शारीरिक संयम ही नहीं है, किन्तु सभी इन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार और मन, वचन, फाय करके काम भाव में सर्वथा मुक्ति है। पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन, असम्भव या अस्वाभाविक नहीं है, किन्तु सम्भव और स्वाभाविक है। यद्यपि पूर्ण ब्रह्मचर्य का सर्वथा में पालन तो गृहस्थ्यागी साधु ही कर सकते हैं, लेकिन आशिक्ष-रूप में गृहस्थ भी पाल सकता है और शरीर के विकास के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करना आवश्यक भी है। हमने लिए दृढ़ता की आवश्यकता अवश्य है। जिसमें दृढ़ता नहीं है, जो इन्द्रियों के किंचित प्रतीप के सामने ही झुक जाता है वह ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता। क्योंकि, इन्द्रियों के सामने थोड़ा भी झुक जाने पर, इन्द्रियों का बल बढ़ता जाता है, वे अपना आविपत्य जमाती जाती हैं और फिर ब्रह्मचर्य से ही दूर नहीं फेंक देती, किन्तु दुराचार के गड्ढे में ही डाल देती हैं।

जिस प्रकार ब्रह्मचर्य स्वाभाविक है, उसी प्रकार दुर्विषय भोग अस्वाभाविक भी है, जिसकी इच्छा होना प्रायः बुरे तौर पर किये गये फल है। गौडीजी के शब्दों में,



और दूसरे सम्बन्धी अयोध बर्षा को यह सिरलाना धार्मिक-कर्त्तव्य सा मान बैठते हैं, कि इतनी उम्र होने पर तुम्हारा विवाह होगा। वस्त्रों के भोजन और कपड़े भी, बच्चे को उत्तेजित करते हैं। बच्चों को सँकड़ों तरह की गर्म और उत्तेजक चीजें खाने को मन्ते हैं, अपने अन्ध प्रेम में, उनकी शक्ति को कोई परवाह नहीं करते। इस प्रकार माता पिता स्वयं विकारों के सागर में डूब कर, अपने लड़कों के लिए बे-लगाव स्वच्छन्दता के आदर्श बन जाते हैं।' गाँधीजी का यह कथन, अभिर्ज्ञान में ठीक है और इस प्रकार का पालन गोपण ही विपश्येच्छा उत्पन्न करने का कारण है।

दुर्विषय भोग, उसी प्रकार अस्वाभाविक और ब्रह्मचर्य उसी प्रकार स्वाभाविक है, जिस प्रकार असत्य, अस्वाभाविक और सत्य, स्वाभाविक है। यदि किसी बालक के सामने, असत्य का वातावरण न आने दिया जावे, तो वह बालक 'असत्य' किसे कहते हैं, यह भी न जानेगा, न असत्य का उपयोग ही करेगा। ठीक इसी प्रकार, यदि किसी बालक के सामने दुर्विषय भोग सम्बन्धी कोई बात न की जावे, काम भोग का कोई आचरण न किया जावे, तो सम्भव उसमें उस प्रकार की दुर्विषय-व्या उत्पन्न हो न होगी, जैसी कि इससे विपरीतावस्था में उत्पन्न हो सकती है। बच्चों के सामने, किसी शुद्ध को यह समझ कर करला, कि ये बच्चे क्या जानें, भूल है। बच्चों पर, प्रत्येक अच्छी या बुरी बात का स्थायी प्रभाव पड़ता है। उनके हृदयरूपी छोटे चित्राट पर, प्रत्येक बात

इस प्रकार अश्रित हो जाती है, जो मिगने से मिट नहीं सकती। घालाव में, यह समझना ही भूल है, कि हमारे किसी कार्य को दृग्ग नहीं देखता या हमारे काय का अस्त्रा-सुरा प्रभाव, दूसरे पर नहीं पड़ सकता। गुण से गुण कार्य और विचारों का प्रभाव भी, इतना गहरा और इतनी दूर तक पडता है, कि जिसका अनुमान लगाना भी कठिन है।

यद्यपि, पूर्ण ब्रह्मचर्य के आदर्श तक सभी लोग नहीं पहुच सकते, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति के सामने इस आदर्श का होना आवश्यक है। जिसकी मानसिक शक्तों के सामने यह आदर्श नहीं है, वह पतित से भी पतित हो जाता है। वह दुर्विषय-वासना की लगाम को, कायू में नहीं रख सकता, किन्तु उसका गुलाम हो जाता है।

पूर्ण ब्रह्मचर्य से नीचा आदर्श, एक पत्नीव्रत और एक पतिव्रत है। जो लोग, पूर्ण ब्रह्मचर्य के आदर्श की ओर, सहसा गति करने में अपने आप को असमर्थ देखते हैं—भाग में पतित होने का भय है—उनके लिए, यह दूसरा नीचे से नीचा आदर्श है। यह आदर्श, कमजोर लोगों के लिए पूर्ण ब्रह्मचर्य तक पहुचने के मार्ग में—एक विभ्रान्तिस्थल है। इससे नीचा कोई आदर्श नहीं है, न इससे नीची अवस्था वाला, ब्रह्मचर्य के भाग का अधिक ही माना जा सकता है।

विषाह, दुर्विषयेच्छा मिटाने की श्वा है, न की दुर्विषयेच्छा की वृत्ति का भाषन। दुर्विषयच्छा की वृत्ति तो कभा ही ही नहीं

सकती। उमरी कृत्रिम क लिए, जैसे जैसे उपाय किया जावेगा, वह वैसे ही वैसे बढ़ती जावेगी। दुर्विषयेच्छा-पूर्ति की प्रत्येक चेष्टा, दुर्विषया का अधिनाशिक गुलाम बनाती है।

विशेषतः विवाह करन का कारण, सन्तानोत्पत्ति की अभिलाषा है, अतः इस अभिलाषा के पूरी हो जाने पर, दुर्विषय भोग का त्याग कर देना ही उचित है। इसी प्रकार बढ़ती हुई सन्तान को रोकने के लिए भी, मैथुन का ही त्याग करना चाहिये, कृत्रिम उपायों का अवलम्बन लेना ठीक नहीं। मन्तनि निरोध के कृत्रिम उपाय, अनीति और पाशाचार को बढ़ाने वाले तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से भी हानि प्रद हैं।

दशप्रति ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा के लिए, स्त्री को पुरुष की और पुरुष को स्त्री की सहायता करना, उचित पर आवश्यक है। यदि किसी समय पुरुष में व्रत या उसकी मयादा भंग करने की बुरी इच्छा हो, तो पत्नी का कर्तव्य है, कि वह प्रत्येक सम्भव उपाय से, अपने पति को ऐसा करने से बचाव। इसी प्रकार, यदि किसी समय स्त्री में ऐसी कुभावना हो, तो पति का भी यही कर्तव्य है। इस प्रकार एक दूसरे की सहायता एवं एक दूसरे को सावधान करत रहने से, पति पत्नी दोनों का व्रत निर्मल पलेगा और कभी न कभी पूर्ण ब्रह्मचर्य का आदर्श तब पहुँच कर अपना कल्याण कर सकेंगे।



